श्री सद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

त्रैमासिक

# अमर सत्य सन्देश

श्री प्रयागधाम ट्रस्ट

अक्तूबर १९९१
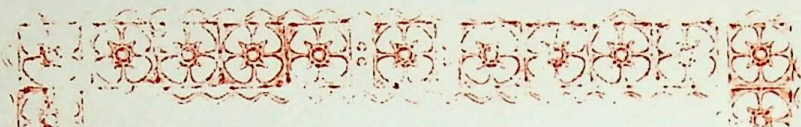
श्रीसद्‌गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का
त्रैमासिक

# अमर

# सत्य सन्देश

अधिपति

**श्री प्रयागधाम ट्रस्ट**

श्री प्रयागधाम

सम्पादकः--महात्मा योग नित्यानन्द

अक्टूबर १९९१

वार्षिक शुल्क १२-००

एक प्रति ३-००

# विषय-तालिका

अमर सत्य सन्देश अक्टूबर १९९१

| अनुक्रमणिका | ❋❋❋ | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|

## विशेष सूचना

सन् १९९१ अक्टूबर का विशेषांक सन् १९९२ जनवरी में दिया जाएगा ।

---

प्रकाशक एवं मुद्रक.--महात्मा योग नित्य आनन्द ने श्री प्रयागधाम ट्रस्ट के लिए, श्री प्रयागधाम प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर अमर सन्देश कार्यालय श्री प्रयागधाम जिला पुणे ( महाराष्ट्र ) ४१२-२०२ से प्रकाशित किया ।

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

त्रैमासिक

# अमर सत्य सन्देश

श्री प्रयागधाम

अक्टूबर सन् १९९१ ई० सौर सं० २०४८ वि०

वर्ष ४] [अंक ४

अथ

# श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

सौम्य वृत्ति महा युग पुरुष, दिव्य तेज भव्य भाल ।
कोटि कोटि मम वन्दना, सतगुरु दीन दयाल ॥

अद्वितीय आलोक से, विश्व भरा उजियार ।
ममता मोह निवार कर, दिया भक्ति धन सार ॥

शेष महेष सुरेश सुर, याचक ठाढ़े द्वार ।
आशिष चाहे भक्ति वर, आंचल भरो दातार ॥

मृदुल चरण धरि सीस पर, मांगें प्रेम असीस।
चौदह भुवनों के धनी, कीजिए वर बख्सीस॥

करूँ परिक्रमा भाव से, अर्पित करूँ हिय फूल।
औगुण दोष निवारिये, काटिये ममता शूल॥

दिशि दिशि में व्याप्त तुम्हीं, धरा गगन तुम ही छाए।
पुनि पुनि आराधन करूँ, दीजिये द्वन्द्व मिटाए॥

प्राप्त करूँ आनन्द सुख, रोम रोम हर्षात।
झुके सीस तव चरणों में, बड़भागी होय माथ॥

जब से पद-रज सिर धरी, संवर गए सब काज।
प्राप्त किया ध्रुव अटल पद, पाकर गरीब निवाज॥

सकल सिद्धियाँ चरणों में, झुक रही आठों याम।
वचनों में झर्र झर्र झर्रे, आतम सुख का ज्ञान॥

छवि के सौम्य तेज से, रवि शशि भरे आलोक।
अन्धकार नाशे सकल, दग्ध हो दारूण शोक॥

पाद-पद्म की छाँव में, पूर्ण दिया निवास।
सेवक शरण लगा लिए, हर ली यम की त्रास॥

विनयशील जब चित्त बना, सतगुरु लिया अपनाए।
शरणागत सेवक नहीं, यम के हाथ बिकाए॥

दया निधि सतगुरु धनी, मोक्ष गति तव हाथ।
दोनों लोक सहाय बन, सेवक किए सनाथ॥

सतत करूँ पूजन श्री, जप जप मंगल नाम।
हृदय मन्दिर में आइये, ऐ पूर्ण सुखधाम॥

तुम दुःख हर्ता सुख सदन, महिमा अगम अगाध ।
करुणा हाथ धरि सीस, मम पूरण कीजिए साध ।।

भटक न जाऊँ भव अगम, मन्ज़िल विकट विशाल ।
बिरद संभारनहार तुम, पग पग रखना ख्याल ।।

दासनदास को दीजिये, टेक श्री चरणार ।
याचे निशिदिन नाम धन, मंगलमय तव प्यार ।।

इति शुभम्

---

# शुभ सूचना

१-कार्तिक सम्वत् २०४८ वि० की संक्रान्ति १७ अक्टूबर सन् १९९१ ई० गुरुवार को होगी ।

२-विजया दशमी १७ अक्टूबर सन् १९९१ ई० गुरुवार को होगी ।

३-शुभ दीपावलि ५ नवम्बर सन् १९९१ ई० बुधवार को होगी ।

४-मार्गशीर्ष सम्वत् २०४८ वि० की संक्रान्ति १६ नवम्बर सन् १९९१ ई० शनिवार को होगी ।

५-पौष सम्वत् २०४८ वि० की संक्रान्ति १६ दिसम्बर सन् १९९१ ई० सोमवार को होगी ।

# सार–उपदेश
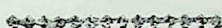
## ( कर्म फल )

कुदरत का कानून और नियम है कि मनुष्य के दिल में जिसप्रकार की ख्वाहिश हर समय काम करती है, वह अन्दर ही अन्दर ताकत पकड़ती रहती है। चाहे जाहिर में प्रतीत न हो, मगर जिसप्रकार की इच्छा, लगन या ख्वाहिश किसी के अन्दर काम कर रही है, वह मनुष्य धीरे-धीरे वही रूप बनता चला जाता है। संसारी जीव क्यों दु:खी हैं ? इसलिए कि उन्होंने अपनी मायावी ख्वाहिशों के द्वारा दु:खों को अत्यधिक मात्रा में अपने अन्दर जमा कर रखा है।

यह नहीं समझना चाहिए कि एक दिन की किसी ख्वाहिश से या एक दिन के मलिन और बुरे संस्कार से जीव दु:खी हुआ है या दयनीय अवस्था को पहुँचा है, बल्कि यह कई जन्मों से जो मलिन संस्कार अन्दर जमा होते रहे हैं वही आज जीव को दु:खी बनाए हुए हैं।

कोई न कोई इच्छा जैसे धन पदार्थ प्राप्त करने की संसार के विषय-भोगों को पाने की, शरीर और इन्द्रियों के सुखों की प्राप्ति की या इसीप्रकार की अन्य ख्वाहिशें मनुष्य काफी समय से अपने अन्दर पैदा करता रहा है। यदि इन की प्राप्ति हो भी जाए तो भी इन का फल दुःख है; तथा अप्राप्ति में भी दुःख मिलता है। जिनका परिणाम यह है कि वह आज दुःखी और अशान्त है।

प्रकृति की तरफ से कभी किसी के साथ अन्याय या पक्षपात नहीं होता, जीव की हालत जो कुछ आज है वह उसकी पैदा की हुई है। अगर कोई यह कहे कि मैंने तो सुख की माँग की थी, मगर बदले में मुझे दुःख और अशान्ति क्यों मिली ? तो इसका उत्तर यह है कि जिन पदार्थों की ख्वाहिश की गई थी, उनका जो प्रभाव है उससे तो कोई छूट नहीं सकता। जो कुछ तुम्हें मिला है, तुम्हारी अपनी माँग से और तुम्हारी अपनी इच्छाओं के अनुकूल ही मिला है। इन मायावी ख्वाहिशों का प्रभाव ही दुःख, बन्धन और नीच योनियाँ हैं। प्रकृति का विधान ही ऐसा है और इससे अधिक या कम होना असम्भव है।

॥ शेयर ॥

अज़ मुकाफ़ाते अमल गाफ़िल मशौ।
गन्दुम अज़ गन्दुम बिरोयद जौ ज़ि जौ॥

अर्थ–"ऐ इन्सान ! कर्मों के फल से कभी गाफ़िल

मत हो, क्योंकि गेहूँ बोने से गेहूँ पैदा होता है और जौ बोने से जौ ही पैदा होते हैं।"

जैसी करनी, वैसी भरनी। जैसा ख्याल, वैसा हाल। जो करोगे, सो पाओगे। कीकर बोकर कभी आम नहीं खाया जा सकता। गुरुवाणी में लिखा है—

जो जीइ होइ सु ऊगवै मुह का कहिआ वाउ॥
बीजे बिखु मंगै अंमरतु वेखहु ऐहु निआऊ॥

(गुरुवाणी-आसा दी वार म० १)

अर्थात् कथनी से कुछ नहीं होता। जो कर्म किया जाता है उसी का ही फल मिलता है। विष का बीज बोकर यदि कोई अमृत की चाहना करे तो वह मिले कैसे? एक साधारण सा बीज भी समय आने पर ज़रूर फल लाता है; क्योंकि उसमें फल देने की ताकत गुप्त रूप से मौजूद है। बिना बीज बोए कोई भी फल प्राप्त नहीं होगा। न ही कभी यह होता है कि बीज कुछ बोया जाए और फल मिले कुछ और।

यह जो दुःख अशान्ति कल्पना और नीच योनियों के बन्धन तुम्हारे पल्ले पड़ गए हैं, यह सब तुम्हारे अपने ही माँगे हुए हैं। जीव खुद ही इन वस्तुओं को एकत्र करके अब परेशान होता और रोता है।

इसी दु:ख, अशान्ति, कल्पना और नीच योनियों के बन्धन से मुक्त होने के लिए ही जीव ने स्वयं मानुष देही की प्राप्ति की इच्छा की थी तथा यह वचन किया था कि मानव देही की प्राप्ति करके नाम सुमिरण तथा भक्ति की कमाई करके नीच योनियों के बन्धन से छूट जाऊँगा; चाहे इसे अब वह वचन याद हो या न हो। इस संसार में आकर माया के छलावे में यह सब कुछ भूल जाता है, परन्तु इसी वायदा को याद दिलाने के लिए ही समय समय पर सन्त सत्पुरुषों का अवतरण होता है।

सन्त सद्‌गुरु ही इस भेद को जानते हैं कि यह जीव क्यों दु:खी है और वे अपने सत्सङ्ग द्वारा उसे दु:खों से मुक्त होने का उपाय बतलाते हैं।

विचार इस बात का करना है कि जिन पदार्थों की चाह में मुबतिला होकर जीव ने दु:खों की पूँजी इकट्ठी की, वे पदार्थ तो एक न एक दिन हाथों से निकल ही जायेंगे परन्तु उनके प्रभाव और संस्कार तो जीव के साथ मौजूद रहेंगे और ये जन्मों तक साथ नहीं छोड़ेंगे।

पहले भी अनेकों जन्मों में जीव ने यही धोखा खाया है कि मायावी पदार्थों की ख्वाहिशों से अपने अन्दर मलिन संस्कार जमा कर लिए हैं और नतीजा के तौर पर आज उसकी दु:ख भरी अवस्था है।

भला यह कहाँ की अकलमन्दी है कि जीव खुद अपने लिए दुःख का सामान खरीदता फिरे तथा काल-माया के बन्धन में फँसने का इन्तज़ाम करे और ख़ुद-बख़ुद ही काल माया की ग़ुलामी को कबूल करता फिरे तथा अपने शत्रुओं के साथ मेल-मिलाप और गठ-जोड़ बनाए रखे।

अब इस गफलत की हालत से जब कोई जीव को जगाता है तो उसे बुरा महसूस होता है क्योंकि सुरति अब इन्हीं चीज़ों में अटक चुकी है और फँसी हुई है। अब इन्हें त्यागना बुरा लगता है और वही काल माया की गुलामी ही जीव को पसन्द है अर्थात् रास आ चुकी है। परन्तु सन्त सद्गुरु नहीं चाहते कि यह जीव माया का गुलाम बना रहे और वे इस गुलामी से छुड़ाना और आज़ाद कराना चाहते हैं।

भूला जीव समझता है कि मायावी पदार्थों को प्राप्त करके मैं उनका मालिक हो गया हूँ किन्तु यह सख्त ग़लत-फहमी है। उल्टा जीव तो खुद उन मायावी पदार्थों का गुलाम बन गया है और उनके कब्ज़े में आ चुका है फिर भी गल्ती से अपने आपको माया का मालिक समझता है। यही धोखा, गल्ती और गुमराही है।

जब कोई इन्सान शत्रु के कब्जे में आ जाए तो फिर भला दुश्मन अपने कब्जे में आए हुए शत्रु को क्यों सुखी रखने लगा, यह सोचने की बात है।

अब जीव की यह हालत है कि इस बन्धन और गुलामी से छुटकारा पाने का तो कभी ख्याल ही नहीं पैदा होता, उल्टे मायावी गुलामी का जुआ अपने कन्धों पर मज़बूती से जमाये रखने की इच्छा बनी रहती है।

अब इसे चाहिए कि काल और माया की गुलामी से आज़ाद होने के लिए सन्त सद्गुरु की गुलामी, दासापन और सेवा करे। अपने आप तो यह जीव काल और माया की गुलामी से आज़ाद होने से रहा, अर्थात् नहीं हो सकता। यह तो केवल सन्त सद्गुरु ही हैं जो जीव को इन ज़बरदस्त बन्धनों से छुड़ाते हैं।

सन्त सद्गुरु जीव के ख्यालों का रुख बदलते हैं। क्योंकि अब यह जीव काल और माया के मुकाबले में आया है और इस मुकाबले के लिए उसे ताकत एकत्र करने की ज़रूरत है। गाड़ी और गाड़ी का इंजन ज्यों का त्यों रहने दिया जाये, केवल लाईन का कांटा बदल दिया जाये तो गाड़ी दूसरी दिशा की ओर जाएगी अर्थात् कांटा बदल देने से गाड़ी का मन्ज़िले-मकसूद बदल जाता है। इसीप्रकार जीव के ख्याल या भावना का रुख बदल जाने से ज़िन्दगी का मकसद और ध्येय भी बदल जाएगा।

तुम सत्-चित्-आनन्द स्वरूप, परम शक्तिमान और निर्मल चेतन्य आत्मा या रूह हो। तुम शरीर या जिस्म नहीं हो। शरीर तो केवल तुम्हारे बैठने के लिए एक आरज़ी

मकान या सफर करने के लिए गाड़ी के एक छकड़े की सूरत में तुम्हें मिला है ।

इस छकड़े या गाड़ी का रुख पहले शत्रुओं की तरफ है अर्थात् काल और माया की तरफ जा रही है । यह गाड़ी जो पहले चौरासी लाख योनियों और नरकों की ओर दौड़ती जा रही है, अब इसका रुख बदल कर सन्त सद्गुरु की तरफ कर दो ।

इसका कांटा 'काल और माया के देश' की बजाय 'कुल मालिक के धाम' को मन्ज़िले-मकसूद बना कर उसी दिशा में जाने वाली लाईन के लिए बदल डालो । यह कांटा केवल सन्त सद्गुरु ही बदल सकते हैं और बदलते हैं ।

सद्गुरु की भक्ति, उनकी आज्ञा-पालन और उनकी सेवा–ये सब कुल मालिक से मिलाने वाले साधन हैं और मायावी पदार्थों का प्रेम काल और माया से मिलाता है ।

अब यह जीव की अपनी इच्छा है कि दोनों में से जिसकी मुहब्बत और प्रेम को चुन ले ।

जान-बूझ कर भी अगर कोई गलती या गुमराही की तरफ जाए तो उसे क्या कहा जाए । सन्त-सद्गुरु तो असलियत को जतला देते हैं । असलियत को समझकर भी अगर कोई न समझे तो उसकी मिसाल ऐसी है कि जैसे कोई

इन्सान हाथों में दीपक लेकर कुएं में जा गिरे।

सोरठा

मन जानत सब बात, जानत ही औगुण करे।
काहै को कुसलात, हाथ दीप कुएं परे ॥

( श्री कबीर साहब )

अर्थ–"जीव का मन भली-बुरी सब बात जानता है किन्तु जान-बूझ कर भी औगुण या बुराई की तरफ लपकता है। भला जिस मनुष्य ने हाथों में दीपक लिया हुआ हो, वह भी यदि कुएं में जा गिरे तो उसकी कुशल किस तरह हो सकती है।"

अब करना यह है कि जिसप्रकार धीरे-धीरे माया और मलिनता की ताकत मनमति द्वारा अन्दर जमा की गई है, उसीप्रकार ही धीरे-धीरे सद्‌गुरु की आज्ञा से भक्ति, प्रेम, सेवा, ध्यान, पूजा और उपासना इत्यादि के द्वारा सद्‌गुरु से मिलकर रूहानी ताकत को हासिल करे।

सन्त सद्‌गुरु शरण में आए हुए जीव के अन्दर भक्ति और प्रेम का बीज डाल देते हैं। इसका आज्ञानुसार सेवन करो और इसकी ताकत को बढ़ाओ।

ज्यों-ज्यों सत्सङ्ग, सद्‌गुरु-सेवा और आज्ञा-पालन

इत्यादिक साधनों में मन लगता है, त्यों-त्यों ही उसके अन्दर भक्ति का बीज फलने लगता है तथा रूहानी ताकत पैदा होती जाती है।

यह भी याद रहे कि भक्ति के मार्ग में रुकावटें भी बहुत आया करती हैं और इन रुकावटों के कारण यदि कहीं पाँव फिसल भी जाए तो भी रुकना नहीं चाहिए। गिरते-पड़ते हुए चलते रहने से यह जीव एक न एक दिन ज़रूर अपनी मन्ज़िल पर जा ही पहुँचेगा।

अतएव सद्गुरु की सेवा, सद्गुरु-भक्ति, सद्गुरु-प्रेम, आज्ञा-पालन और दृढ़-विश्वास के द्वारा अपने अन्दर सच्ची रूहानी ताकत को पैदा करके मानुष जीवन का सच्चा लाभ प्राप्त करना है।

# शुभ दीपावली

झिलमिला रहे दीप हैं कतारों में,

पर्व यह अनुपम सभी त्यौहारों में।

है हर्ष विभोर जन जन विश्व का,

कोना कोना जगमगाया अर्श का;

बिनस गई मानो अमावस दुःख की रात,

भर गया कण कण में उजला उजास।

परस्पर का मिलन यह कितना सुखद,

हो रहे रस प्रेम में सब ही मुग्ध।

झूम रहे झूमें ज्यों फूल बहारों में,

पर्व यह अनुपम सभी त्यौहारों में॥

सुख यह क्षणभंगुर नहीं इसमें कयाम,

अज्ञ प्राणी इस को ही रहा सत्य मान;
बाहरी प्रकाश में उन्मत्त सदा,
व्याप्त हिय तम जिससे है यह बे-पता।
कैसे सुख आध्यात्मिक प्राप्त करे,
जब तक नहीं मर्म सुख का पा सके।
भेद यह मिले सन्तों के इशारों में,
पर्व यह अनुपम सभी त्यौहारों में॥

शाश्वत् आनन्द सुख चाहे खुशी,
शरण करनी ग्रहण होगी सन्तों की;
वह करेंगे नाम का उर में प्रकाश,
होगा जिससे मन अविद्या का विनाश।
असुरी बुद्धि विशुद्ध बन जाएगी,
शब्द रस में सुरति सुख मनाएगी।
खो जाएगी प्रेम के हुलारों में,
पर्व यह अनुपम सभी त्यौहारों में॥

है यथार्थ में दीवाली 'दास' वह,

नाम के शाश्वत् जहाँ उजास है ;

त्रिविध तापों का न छू पाए त्रास,

मिट जाए चौरासी चक्कर का सन्ताप ।

इस पर्व में हेतु रूह कल्याण के,

जोड़ ताल्लुक सतगुरु के नाम से ।

होगा जगमग चाँद ज्यों सोहे तारों में,

पर्व यह अनुपम सभी त्यौहारों में ॥
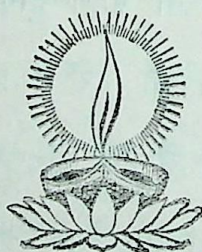
# अनन्य प्रेम

अनन्य-प्रेम का तात्पर्य एक निष्ठा केवल-केवल इष्टदेव से प्रेम का सम्बन्ध। प्रेम साचा हो जिससे भी हो, अपना रंग दिखाता है। प्राणी मात्र से प्रेम हो या मालिके-कुल से, प्रेम में अनन्यता का होना ही वास्तव में प्रेम है। यही प्रेम एक न एक दिन प्रेमास्पद के स्वरूप में ही मिला देता है, परस्पर में भिन्नता सर्वथा मिट जाती है, प्रेमी तद्रूप हो जाता है जिसे एकाकार कहते हैं। प्रेम ही एक प्रकार की कला सुसाधन है प्रियतम के वशीकरण का। प्रेम में वह माधुर्य है, वह सुधा रस है जिसके पान करने से उन्मत्त-दिवाना तो प्राणी हो ही जाता है परन्तु वह अमरत्व पद की भी प्राप्ति कर लेता है। ऐसी ही अनन्य प्रेमियों की झांकियां तथा दिग्दर्शन प्राचीन इतिहासों से मिलता है।

प्रेम की साकार प्रतिभा, सती साध्वी जनी बाई जिस ने कि प्रेम, भक्ति, साधु-सेवा का ज्वलंत उदाहरण सब के सामने प्रस्तुत किया, निम्न जाति तथा अबोध बालिका होने पर भी वह उच्चकोटि का प्रेम, आदर्श दिखा मिसाल

कायम कर गई।

एक बार पण्ढरपुर में कार्तिक स्नान का पर्व मनाया जा रहा था, जिसमें सम्मिलित होने के लिए जिज्ञासु दूर-दूरस्थ से आए। सती साध्वी जनी बाई को भी ऐसा सुन्दर सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह अभी अल्पायु थी। अपने माता पिता के साथ वह भी इस उत्सव से लाभवन्त हुई। पूर्व संस्कार जागृत हुए, जनी बाई का सन्त संगति से साक्षात्कार होना ही था कि उसका एकाएक काया-कल्प हो गया।

भगवान विट्ठल के श्री मन्दिर में श्री सन्त नामदेवजी ने अनुभवी वाणी द्वारा सब को अमृत रस का पान कराया कीर्तन मंगलाचरण हुआ। आने वाले जिज्ञासु दर्शनार्थी भक्ति रस से सराबोर हो गए। उस समय की प्रथा अनुसार शुद्र जाति को श्री मन्दिर में प्रवेश वर्जित था। तथापि श्रद्धालु श्री मन्दिर के आँगन में मधुर वाणियों का अमृतपान कर लिया करते थे। ऐसे भक्ति प्रेम के रचित वातावरण को प्राप्त कर जनी बाई जैसो विमल संस्कारी आत्मा पर कैसे अद्‌भुत् रंग अंकित न होता।

महान दिव्य पुरुष श्री नामदेव की सङ्गति तथा अमृत-सनी शिक्षाप्रद वाणियाँ उसको क्या से क्या बना गई। भक्ति की कीमत तथा मूल्यांकन करने वाले सत्पुरुष जाति-पाति कब देखते हैं। उनकी पैनी दृष्टि आत्मा की विमलता पर ही टिकती है। जनी बाई ने यह निश्चय कर लिया कि अब

ऐसी सुदुर्लभ संगति को छोड़ गाँव में जाना व्यर्थ है क्योंकि संगति के प्रभाव से संस्कार तो जागृत हो ही चुके थे। अब समस्या जाति की, सो परिपूर्ण तत्त्ववेत्ता सत्पुरुष जाति-पाति की भिन्नता कब देखते हैं, वह तो ज्ञान भक्ति की बात करते हैं।

"जाति न पूछो सन्त की पूछ लीजिए ज्ञान" ॥

कहाँ जनी बाई को श्री मन्दिर के आँगन में बैठने की अनुमति मिली, और कहाँ श्री सन्त नामदेव जी की निजी सेवा का अवसर प्राप्त। पर्व की समाप्ति पर जनी के माता पिता गाँव लौट गए। उनके लाख यत्न करने पर भी जनी उनके साथ नहीं गई। उसने निश्चय कर लिया कि मैं अपना समस्त जीवन सन्त शरण में उनकी सेवा सुश्रुषा तथा भक्ति-भाव नामाराधन में ही व्यतीत करूँगी।

सभी लोग अपने अपने गृहों में लौट गए अब अकेली जनी रह गई। जब श्री सन्त नामदेव जी ने अकेली अबोध बालिका को वहाँ उपस्थित देखा, तो उसे अपने समीप बुला कर पूछा, तू अकेली यहाँ क्यों है? जनी ने विनयावन्त प्रत्युत्तर दिया, श्री प्रभो! उत्सव की समाप्ति पर मेरे माता पिता अपने गाँव चले गए हैं, परन्तु उनके लाख कहने पर भी मैंने उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया। मैं श्री सन्त सेवा का सौभाग्य आप से अभिलाषा करती हूँ। आप दया के अगाध सिन्धु हैं मुझ दीन-हीन अकिंचन पर अनुग्रहपूर्ण चितवन डालते हुए श्री सेवा प्रदान कीजिए।

ऐसा विनीत भाव प्रदर्शित करती हुई जनी चरणों में गिर पड़ी।

त्रिकालदर्शी सन्त सत्पुरुष हृदय से उठती हुई साची पुकार से अनभिज्ञ नहीं होते। जीव के विमल उद्गारों को तथा पूर्व विस्वच्छ संस्कारों पर दृष्टिपात करते हुए अपनी भटकी आत्माओं को अपने साथ एकाकार करने के लिए व्यग्र रहते हैं। अब जनी पर करुणा भरी दृष्टि पड़ने का सुअवसर समागम प्रकृति ने स्वयं रच दिया। इसप्रकार जनी की दीन प्रार्थना पर श्री सन्त नामदेव जी द्रवित हो गए, उसके सिर पर अपनी कृपा का हाथ रखते हुए अपने आश्रम पर ले गए और सेवा सुश्रुषा की अनुमति दे दी। जनी तन प्राण से श्री सेवा में मग्न हो गई।

सन्तों सत्पुरुषों की लगन से तथा अनुराग-युक्त की हुई सेवा प्राणी में अलौकिक रंग भर देती है। जनी ऐसी सन्तों द्वारा नव-निर्मित भाग्य रेखा पर प्रमुदित मन, तन की सुधि खोए सेवा में तल्लीन रहने लगी और स्वाँसों से नामाराधन का पृथक लाभ उठाने लगी। श्री नामदेव जी के आश्रम का झाड़ना, बुहारना, भोजन आदि बनाना, समय पर जागना, आटा पीसना समस्त कार्य जनी ने अपने ऊपर ले लिया। वह सेवा-सुख में इसप्रकार आनन्द विभोर हो जाती कि अपनी स्मृति तक खो बैठती। ऐसी अवस्था में सेवा करते-करते भी छूट जाती, ऐसे समय में श्री प्रभु को

वह सेवा कार्य स्वयं पूरा करना पड़ता। जब जनी चेतन अवस्था में आती तो काम-धन्धे की चिन्ता में हड़बड़ा कर उठती परन्तु समस्त कार्य पूरा हुआ पाती।

जनी की सेवा, प्रेम लगन, भक्ति इसप्रकार दृढ़ता प्राप्त कर गई कि श्री प्रभु स्वयं जनी की सेवा पूर्ति के लिए तत्पर रहने लगे। जनी के प्रेम-उन्मत्तता, लगन, भक्ति ने भगवान को इसप्रकार वशीभूत कर लिया कि जनी भजन सुमिरण के अपूर्व आनन्द रस का पान करती रहती, श्री प्रभु उसकी सेवा सतर्कता से निभाते।

जैसे सन्तों के वचन हैं–

पलटू सोए नींद में साहिब चौकीदार ॥
बंध जाते प्रभु प्रेम की रज्जु में इस कदर,
निसार स्वयं हो जाते हैं प्रेमी के प्रेम पर।
ऋण चुकता कर न सकते हैं स्वयं को भी करके दान,
प्रेमी से खेलते न ऋषियों के जो आवे ध्यान।

कितना सुन्दर प्रेम का सजीव चित्रण यहाँ प्रस्तुत है। जो प्रभु योगी, ऋषि-मुनियों के ध्यान में नहीं आते वह प्रेम की सूक्ष्म डोरी में ऐसे बन्ध जाते हैं–आजीवन मुक्त-बन्धन नहीं हो सकते। भगवान प्राप्ति का कितना सुगम सरल साधन है। अद्वितीय प्रेम है मालिक का, ऐसा निस्वार्थ प्रेम क्या कोई दूसरा कर सकता है? ऋषियों-मुनियों के मनोहारी

स्वच्छ आश्रम छोड़ शुद्र जाति शबरी के आश्रम पर श्री राम को ले जाने वाला प्रेम ही तो था। प्रेम का प्रभाव ही प्रत्यक्ष करने के लिए पम्पासर में श्री रामचन्द्र भगवान ने भीलनी के चरणों का स्पर्श कराया। अभिमान वृत्ति का खण्डन करने वाले भगवान ने प्रेम को वह महत्त्व दिया जिसने कि दुर्योधन की अतुलनिय राज्य-भोग सामग्री को ठुकरा दिया, महात्मा बिदुर का भोजन प्रेम से प्राप्त किया।

वही प्रेम जनी को उच्चकोटि के प्रेमियों की शृंखला में बाँध रहा है। इसप्रकार शनैः शनैः जनी का प्रेम--प्रेम की परिधि लाँघ गया। प्रायः जनी प्रातः उठ कर सन्त महात्माओं के लिए चक्की पीसने की सेवा किया करती थी। एक बार रात्रि को बहुत देर तक सत्सङ्ग-वार्ता चलते रहने के कारण जनी देर से सोई, तो उसकी निद्रा समय पर नहीं खुल सकी। विलम्ब हो जाने से वह शीघ्रातिशीघ्र पीसने का कार्य करने लगी। विरद की लाज रखने वाले भगवान स्वयं जनी के पास आ आटा पिसवाने में मदद देने लगते हैं। भोली-भाली अबोध वालिका प्रेम के प्रभाव महत्त्व को क्या जाने ! वह तो प्रभु प्रेम का अपना ही असर था जो उसे बेसुध बना देता था। जनी आटा भी पीसे जा रही है, भगवान के मनोहारी सुन्दर स्वरूप पर भी आँखें जमाए हुए है।

भक्त-वत्सल भगवान चक्की पिसे जा रहे हैं उधर पसीने से भी तर-बतर होने लगे। अत्यधिक गर्मी का अनुभव करने से अब नया खेल रचाते हैं। अपने कण्ठ से सुसज्जित

हीरे जड़ित अमूल्य हार उतार कर रख देते हैं और समय हो जाने के कारण द्रुत गति से चक्की चलाते जाते हैं। उधर भगवान की मोहनी सुन्दर छवि निहारते-निहारते जनी समाधिस्थ हो गई। चक्की का कार्य सम्पूर्ण हो जाने पर श्री प्रभो अन्तर्धान हो गए परन्तु अपना अमूल्य हार वहीं छोड़ गए।

प्रेम रंग में सराबोर हुई जनी वहीं बैठी आनन्द सागर में हिलोरें ले रही थी। कुछ ज्ञात नहीं आटा कैसे पिस गया, भगवान कब चले गए। आत्मिक आनन्द में लीन संसार की सुधि विस्मृत वहीं की वहीं रह गई। विस्मृत कैसे न होती उसके प्राणधन उसकी आँखों में समाहित हो चुके थे। वह अलौकिक दृश्य कैसे छोड़ती। जब प्रेमी का प्रेम, प्रेम की चरम सीमा पार कर जाता है तो वह प्रियतम को प्रेमी से पल भर के लिए भी पृथक नहीं होने देता। जनी अपनी प्रेम अवस्था में सुधि बिसराये चक्की के पास नैन मूंद समाधिस्थ है। उधर श्री मन्दिर खुलने का समय हो गया। पुजारी लोग श्री प्रभु की दिव्य प्रतिमा को स्नान कराने लगे। अकस्मात् पुजारी की दृष्टि जैसे ही श्री प्रतिमा पर पड़ी, वह सन्न रह गया क्योंकि श्री प्रभु के गले में मूल्यवान् हीरों जड़ा हार नहीं था।

तत्काल ही चारों ओर बात फैल गई। सभी चिन्तित थे, खोज खबर होने लगी। श्री मन्दिर का कोना-कोना छान ड़ाला परन्तु कहीं चोर का पद-चिन्ह अंकित न मिल पाया।

इधर जनी वही पूर्व अवस्था में वहीं चक्की के पास ध्यान-मग्न है किसी की भी सुधि खबर नहीं। दूसरे काम काज जनी के सभी अधूरे पड़े हैं। अब श्री नामदेव जी जनी की खोज खबर लेने उधर ही आ निकले जिधर वह सेवा तथा दर्शन, प्रेम सुख में मग्न थी। वहाँ आकर क्या देखते हैं ! कि जनी समाधिस्थ है और हीरों जड़ित हार उस के निकट पड़ा है।

अब देखो प्रेम परायण जनी पर क्या गुज़रती है। कष्ट भी तो प्रायः प्रेमियों पर ही आते हैं। मगर प्रेमी कब घबराते हैं, वह तो हँस-हँस झेल जाते हैं। सच्चे प्रेमी ही अपने लिए प्रमाण हैं। माला देख वह आश्चर्य में डूब गए। पुनः परस्पर यही सिद्ध किया कि हार इसी ने चुराया है। आँखें मूँद कर प्रेम का आडम्बर रच रही है। उसी को चोरी का आरोप मढ़ कर श्री मन्दिर के पुजारी को सूचित कर दिया कि माला जनी से प्राप्त हो गई है।

फिर क्या था ? चोरी के आरोप में जनी बन्दी बना ली गई और राजा की अदालत में पेश की गई। जब साध्वी जनी बाई से अपराध के विषय में पूछा गया तो उसने सर्वथा अस्वीकृति दे दी क्योंकि वह अपराध से अनभिज्ञ थी। यह सब श्री प्रभु की अपनी ही रचाई हुई रचना थी। यद्यपि प्रेम पथ में कष्टों का सामना ही न करना पड़े तो सच्चे प्रेम की मन्ज़िल में फिर असम्भवता ही क्या ? फिर तो सभी प्रेमी बन जायें। प्रेम का वह अमृत फल है जहाँ जान-ो-दिल

व प्राण का मूल्य चुकाना पड़ता है, यहाँ तक कि भगवान स्वयं भी दर्शक बन प्रेमी की विकट अवस्था को अनभिज्ञ बन चुपके से निहारते रहते हैं। प्रेम-पथिक कष्टों से हँस हँस खेलता है। उसकी मुखाकृति कभी बदलती नहीं। घबराहट, भय के चिन्ह कभी अंकित नहीं होते। देश सम्राट ने निश्चय कर लिया कि जनी ने यह अपराध किया है। इस अपराध के उपलक्ष में इसे सूली की सज़ा दी जाए। यह कठोर दण्ड जनी को सुना दिया गया और भीमा नदी के तट पर सूली चढ़ाने का प्रबन्ध कर दिया गया।

अब देखो ! जनी के परम दयालु, परम रक्षक भगवान जो कि उसे गृह के काम-काज में भी सहायता देते हैं, चक्की तक पिसवाने का कार्य भी सम्पन्न करते हैं, वह जनी पर आए हुए संकट का निवारण किस प्रकार नहीं करते। जनी अपने श्याम सुन्दर की दिव्य झाँकी नयनों में अंकित कर सुधि खोए हुए उन्मत्त सी प्रेम में लीन सूली के पास प्रस्तुत की गई।

ज्यों ही जनी को सूली पर लटकाया जाने लगा, एक अलौकिक चमत्कार प्रकट हुआ जिसने सबको चकाचौंध कर दिया। भक्त-वत्सल भगवान प्रेम परायण जनी की लाज किस प्रकार बचाते हैं ? एक अदृश्य शक्ति ने आकर सूली को टूक-टूक कर दिया। समस्त दर्शक गण इस दिव्य चमत्कार को देख कर अवाक् रह गए। जनी की सत्यता का अथवा प्रेमा-भक्ति का परिणाम सब के सामने प्रकट हो गया। इस

अद्‌भुत कौतुक को देख सब की आँखें खुल गईं। जनी चोरी के लाँछन से मुक्त हो गई। सभी को यह ज्ञात हो गया कि यह साधारण मानवी नहीं है बल्कि प्रभु की अतुलनीय कृपा-पात्र प्रेमिका है। सभी जनी के आगे नतमस्तक हो गए, क्षमा-याचना की तथा उसके सच्चे प्रभु प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

प्रभु के अनन्य प्रेमी आने वाली विपत्तियों को भी प्रभु का अनुग्रह समझते हैं। वह मुश्किलों से विचलित नहीं होते, चट्टान की तरह अडिग रहते हैं। जनी पूर्ववत् शान्त-मुद्रा में प्रभु सेवा में जुट गई उसे किसी पर भी रोष नहीं। सब प्रभु की ही दया जान उसने किसी को उलाहना नहीं दिया। सारे संसार के समक्ष सच्चाई, प्रेम, साधु-सेवा, गुरु भक्ति का आदर्श कायम कर गई। आजीवन सन्तसंगति में अथवा सेवा की पवित्र भावना स्वच्छ उद्‌गार हृदय में संजो मानव तन को कृत-कृत्य सार्थक बना गई।

सारांश–भक्ति-पथ सुगम सरल नहीं, परन्तु प्रेम-पथिक पीछे नहीं देखते वह आगे बढ़ने में प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दृढ़ संकल्पी प्रेमियों का साथ निभाने के लिए कुदरत की समस्त शक्तियाँ प्रस्तुत अथवा तत्पर रहती हैं। भगवान सच्चे प्रेम के ग्राहक हैं। वह प्रेम में आगा-पीछा, जाति-पांति का भिन्न-भेद नहीं देखते और न ही प्रेमी पर आँच आने देते हैं।

सन्त सत्पुरुष महानुभावों का मानव प्राणी के लिए

सन्त सन्देश अथवा धुर आदेश है कि मानव जन्म का वास्तविक मूल्य यथार्थ कीमत तथा उचित प्रयोग यही है कि जीवन के इन अमूल्य क्षणों में प्रभु प्राप्ति अथवा भक्ति-धन को संचित करे जिसमें शाश्वत् सुख सच्चा आनन्द मानव जन्म के उद्देश्य की पूर्ति है । लाख चौरासी योनियों से बन्धन-मुक्त होने का दूसरा कोई साधन नहीं है । इसी में बुद्धिमता, विवेकशीलता तथा आत्मा का हित साधन है । इसी विशेष कारण की पूर्ति के लिए ही जीव को अमूल्य जन्म की उपलब्धि हुई है ।

यह विवेक सन्त संगति से प्राप्त कर उन से नाम की दीक्षा ले सुमिरण की निधि संचित कर परलोक की राह सुधार ले । यही जन्म का वास्तविक ध्येय है ।

# शान्ति शिखर

संसार स्वप्नवत् है। माया की झिलमिल, रंग-तमाशे, महल-माड़ियां सब झूठ का पसारा हैं। अर्थात् जिसप्रकार स्वप्न की दृश्यमान् वस्तुयें, भोग्य पदार्थ कुछ समय के लिए सत्य प्रतीत होते हैं परन्तु होते भ्रममात्र हैं। यह जीवन जो बीत गया, जो बीत रहा है और भविष्य सब स्वप्नवत् गुज़र गया, गुज़र रहा है, गुज़र जाएगा। इस स्वप्न को यदि सत्य समझकर इसमें रमा रहेगा तो अशान्ति के सिवा कुछ भी हाथ नहीं आएगा। यदि शान्ति का इच्छुक है तो इन सब को स्वप्नवत् जान। जिन्होंने इस रहस्य को जान लिया उन से युक्ति पूछ। यदि इसीप्रकार दिन रात अज्ञानता के अन्धेरे में भटकता रहा तो अशान्ति की लहरों में डूबता उतरता रहेगा। आखिर जो सच है, वह अनादि से सच है और सर्वदा के लिए है, उसे जानने के लिए पग उठाना ही होगा। सत्पुरुषों ने इस संसार के स्वरूप को जान लिया, वे शान्ति-शिखर तक पहुँच गए और उन्होंने संसार का चित्रण कर दिया कि—

॥ कुण्डली ॥

ऊँच नीच किसको कहूँ, सबही एक स्वरूप।
ब्रह्मा चींटी एक हैं, एक रंक अरु भूप॥

जलमात्र सब लहर, बुदबुदे जल के बीच ।
त्यों यह सब प्रपंच, ब्रह्म, क्या ऊंच ग्ररु नीच ।।

ग्रर्थात् इस संसार में कौन ऊँचा है ग्रौर कौन नीच है । सभी उस परमात्मा का ही स्वरूप हैं । सब में वही एक ग्रात्मा की संचालक शक्ति काम कर रही है। चींटी से लेकर ब्रह्मा तक तथा राजा ग्रौर रंक एक ही रचना के ग्रलग ग्रलग घड़े हुए बर्तन हैं । जिसप्रकार कि खाँड से भाँति-भाँति के खिलौने बनाए जाते हैं । हाथी, घोड़ा, बिल्ली, शेर ग्रादि परन्तु उनका ग्राधारभूत चीनी ही है । केवल ग्राकारमात्र को सत्य समझ लेना धोखा है, भ्रम है । यदि कोई चीनी के घोड़े पर सवारी करना चाहे ग्रौर शेर के ग्राकार से डरने लगे तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा ? जिसप्रकार समुद्र के बीच में पानी बुद-बुदे बनकर फटते जाते हैं ग्रौर पानी बन बीच में समा जाते हैं, इसीप्रकार यह संसार की रचना भी भ्रम मात्र है । इसमें ऊँच-नीच नहीं है ग्रर्थात् माया का पसारा सब ग्रोर फैला हुग्रा है । किसी को बड़ा छोटा मानकर मान-राग-द्वेष में उलझ जाना भ्रममूलक है । बस ! यह समझो कि यह सब सपने की न्याईं है। किसी ने ग्रपमान कर दिया तो क्या, यदि सम्मान मिला तो क्या ? यह सब इसी संसार का ही खेल मात्र है ।

संसार में जिन्होंने इस सत्यता को जाना उन्होंने हँस-हँसकर सब परिस्थितियों को पार कर लिया ।

विश्वविजेता नैपोलियन–जिसकी ख्याति इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। विजय के साथ पराजय–यह तो चलती रहती है। यदि एक बार पराजित हो गया तो क्या है ? पुनः दाव लगा लेगा। एक बार नैपोलियन हार गया था और उसे सेन्ट हेलना नामक द्वीप में कैद कर दिया गया परन्तु नैपोलियन के चेहरे पर मुस्कराहट थी। वह मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। विजय भी एक सपना है तो पराजय भी एक सपना। फिर सपने से रोना-धोना और उदास होना क्यों। वह प्रातः सैर करने के लिए बाहर पगडंडी पर निकला उसका सेनापति साथ था। पगडंडी बहुत छोटी थी। सामने से एक घसियारी घास का गट्ठा उठाए उसी मार्ग पर बढ़ रही थी। सेनापति ने कड़ककर कहा–ऐ घसियारी ! रास्ते से हट जा। तुझे मालूम नहीं कि सामने नैपोलियन आ रहा है।

नैपोलियन ने बड़े प्यार से सेनापति को कहा–वाह खूब कही ! अब वह नहीं हटेगी मार्ग से, नैपोलियन हटेगा। यह उसका अपना मार्ग है। अब तो सपना बदल गया। वह सपना कि विजेता नैपोलियन जिस मार्ग से गुज़रेगा, पहाड़ नदियां, वन सब उसके आदेश से समतल भूमि बन जायेंगे। उसे मार्ग देंगे। अब वही सपना एक बन्दी के रूप में बदल गया है। इतना कहकर उसने सेनापति का हाथ पकड़ा और एक ओर हो गया। घसियारी बीच मार्ग से होती हुई गुज़र गई। सेनापति मन मसोस कर रह गया। उसके मुख से एक दुःखभरी आह निकली।

नैपोलियन ने उसे कोमल स्वर में कहा—भई ! इसमें दु:खी होने की क्या बात है। नैपोलियन तो वही है जो पहले था। उसके अंग-प्रत्यंग कुछ भी नहीं बदले। वह भी सपना जो स्वयं बनाया था और यह भी सपना है जो बीच में विचित्र रंग दिखा रहा है। इसमें हर्ष-शोक कैसा। जैसे वे दिन नहीं रहे वैसे यह भी न रहेंगे। नैपोलियन ने अद्भुत सत्य दर्शा दिया। इस सत्य को स्वीकार करने पर, इस रहस्य को समझ लेने पर ही शान्ति की पगडंडी सामने आती है जिसपर चलकर मनुष्य शिखर पर पहुँच सकता है।

श्री रामायण के अयोध्याकाण्ड में लक्ष्मण जी गुह को संसार की रचना का, भ्रम का मूल वर्णन करते हैं—

॥ चौपाई ॥

बोले लखन मधुर मृदु बानी ।
ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥
जोग बियोग भोग भल मंदा ।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू ।
संपति विपति कर्म अरु कालू ॥

धरनि धामु धनु पुर परिवारू ।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ।।
देखिय, सुनिय, गुनिय, मन माहीं ।
माया कृत परमारथ नाहीं ।।

।। दोहा ।।

सपने होइ भिखारी नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ।।

यथा

नरपति एक सिंघासनि सोइया, सुपने भइया भिखारी ।।
अछत राज बिछरत दुःख पाइया, सो गति भई हमारी ।।

लक्ष्मण जी ने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी में निषादराज को समझाया–हे भाई ! कोई किसी को सुख दुःख देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए कर्मों का फल भोगते हैं । मिलना-बिछुड़ना, भले-बुरे, भोग, शत्रु-मित्र–ये सब भ्रम के फन्दे हैं । जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल–जहाँ तक जगत का पसारा है, सब जंजाल है । धरती, धन, घर, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है, जो देखने सुनने और मन में विचारने में आते हैं–इन सब का मूल मोह ही है, माया का पसारा है । इसमें परमार्थ नहीं है ।

जैसे स्वप्न में भिखारी राजा हो जाय और स्वर्ग का राजा इन्द्र भिखारी बन जाये तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है। ऐसे ही इस दृश्य प्रपंच को हृदय से देखना चाहिए।

कहते हैं कि एक राजा का लड़का मरणासन्न था। वह राजा सत्सङ्ग में जाया करता था और उसे यह ज्ञान मिला हुआ था कि संसार को स्वप्नवत् जानो। जो इसे सत्य समझता है वह अज्ञानी है। राजा का एक ही लड़का था। राज्य का उत्तराधिकारी बीमार पड़ गया, राज्य कौन सम्भालेगा ? यही उसके ख्यालों में आया ही था कि रात्रि समय स्वप्न में देखा कि उसके आठ पुत्र और दो लड़कियाँ उत्पन्न हुई हैं। वह उनसे क्रीड़ा-विनोद करके राजभवन से बाहर निकला ही था कि अकस्मात् बिजली गिरी और राज-भवन धराशायी हो गया। बीच में लड़के-लड़कियाँ, स्त्री-दासियाँ सब काल का ग्रास बन गए। जैसे ही उसके मुख से एक चीख निकली कि सपना टूट गया और राजा उसी शैय्या पर सोया हुआ आँखमिचौनी की भाँति इस खेल पर विचार करने लगा।

इसके विपरीत राजभवन के सामने काफी दूरी पर एक निर्धन व्यक्ति रहता था। उसका मन राजभवन के वैभव को देख कर ललचाता था। हाय ! उसके जीवन में भी ऐसे सुख भोग लिखे होते तो कितना अच्छा होता। वह दिन-रात राजभवन में रहने, और छत्तीस प्रकार के सजे

हुए व्यंजनों को ख्यालों में देखा करता था। जिस दिन रात को राजा को स्वप्न आया कि उसके सन्तान व प्रजा समृद्धि-शाली हैं और अचानक राजभवन के गिरने से सब की मृत्यु हो गई। उसी दिन उस निर्धन को स्वप्न आया कि वह राजमहल में पहुँचा है। राजा बहुत दुःखी है। अतः इस निर्धन को राज-पाट देकर स्वयं भगवत् भजन के लिए चल देता है। यह राज-ऐश्वर्य का भोग करना ही चाहता है कि दूसरे देश से राजदूत लड़ाई का सन्देश लेकर आ जाता है। लड़ाई ! ओहो ! उस में तो अनेकों खून हो जायेंगे। फिर भी विदित नहीं कि प्राण बचें या न बचें।

यदि लड़ाई नहीं करना चाहते तो राज्याधिकार हमें दे दो। युद्ध करना राजाओं की शूरवीरता का चिन्ह है—राजदूत ने कड़ककर कहा।

उसकी कर्कश आवाज़ सुनते ही निर्धन की निद्रा भंग हुई। उसका स्वप्न टूट गया। उसका दिल धक्-धक् कर रहा था। वह इस स्वप्न पर विचार करने लगा कि राज्य वैभव में केवल सुख-भोग ही नहीं, प्राण सदा संकट में रखने होते हैं।

विधाता की करनी। प्रातः हुई। राज कर्मचारियों ने राजा को प्रणाम कर कहा—महाराज ! आपको अर्द्धरात्रि में उठाना उचित न समझा। आपका इकलौता राजकुमार स्वर्ग सिधार गया है। अत्यन्त शोक है उसका। राजन ! आपके लिए कहर ढह गया।

राजा अपने ही ख्यालों में खोया रहा और बिना किसी खेद के कहा–परमात्मा की धरोहर परमात्मा तक पहुँच गई।

यह क्या कह रहे हैं महाराज ! इकलौता बेटा ! शायद आप समझ नहीं पा रहे।

हाँ हाँ ! मैं समझ रहा हूँ। मैं उन आठ पुत्रों का शोक करूँ या इस एक का। जैसे वे पैदा हुए, वैसे यह। जो रात को देखा वह भी स्वप्न था और जो अब आपने बताया वह भी स्वप्न है। स्वप्न में क्या खोया, क्या पाया। सब कुछ यहीं पर है। इतने में वह निर्धन प्रजा के अन्य लोगों के साथ शोक जतलाने राजभवन के द्वार पर पहुँचा। भीड़ को चीरता हुआ उसने स्वप्न की बात बताई। राजा ने कहा–लो सम्भालो राज-पाट ! जब स्वप्न में तुम्हारा हो गया तो दयालु परमात्मा ने बोझ हल्का कर दिया। लो हम जाते हैं भगवद् भजन करने।

निर्धन ने हाथ जोड़कर विनय की–नहीं महाराज ! मैं दूसरे राजाओं से लड़ नहीं सकूंगा। मुझे क्षमा कीजिए। मुझे थोड़े समय के लिए राजभवन में रख लीजिए ताकि मेरी हार्दिक आकांक्षा पूर्ण हो जाय। मैं भी यह जान सकूं कि आपको राज-पाट और वन में जाना एक समान क्यों है। न आपको आए की खुशी है न गए का ग़म। ऐसी स्थिति तो किसी विरले सन्त को ही प्राप्त होती है।

राजा ने कहा–जैसा तुम्हारा मन चाहे वैसा कर लो।

हमें तो सन्तों ने एक ही शिक्षा दे रखी है कि—

जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार ॥
दृसटिमान सभु बिनसीये किया लगहि बार ॥

यथा

सुपना यह सब जगत है, या है तेरा ख्याल ।
जादूगर खुद होय तू, रचिया इन्दर जाल ॥

रचिया इन्दर जाल, नहीं दिल इसमें देना ।
झूठा दुख और सुख, झूठ देना और लेना ॥

झूठ हरष अरु शोक, झूठ जीना अरु मरना ।
जादू का है खेल, जगत या जानो सपना ॥

कि अज्ञान के कारण ही यह संसार सत्य भासता है परन्तु है यह जीव के ख्यालों द्वारा स्वप्न महल । इसमें यह जीव स्वयं ही जादूगर बनकर माया का जाल फैला लेता है । सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि इस माया जाल में दिल नहीं फँसाना । दु:ख तथा सुख, लेन-देन, हर्ष-शोक, जीवन-मरण सब छलावामात्र हैं । यह जादू के खेल की भाँति स्वप्नवत् है । जिसप्रकार जादूगर एक मिनट में एक नोट में से हज़ारों नोट निकाल निकालकर फैंकता जाता है । यह केवल भ्रम-मात्र ही होता है । यदि वह एक नोट में से हज़ारों नोट बना

सकता ; यदि यह पूर्णतय: सत्य होता तो उसे घर-घर में जाकर कलाबाज़ी दिखाने की क्या ज़रूरत थी। इसीप्रकार वह अन्य कई चीज़ों को बना बना कर दिखाता है और तोड़ता जाता है। इस भ्रममूलक को यदि कोई सत्य समझ बैठे कितने बड़े धोखे का शिकार हो जाएगा। जब सत्यता सामने आएगी तो पछताएगा।

इसीलिए शान्ति शिखर को पाने के अभिलाषी जिज्ञासु को चाहिए कि सन्त-महात्माओं, सत्पुरुषों से सत्य-असत्य के भेद को जानकर सत्यता का मार्ग अपनाए। जिसने संसार को स्वप्नवत् जान लिया, सफलता उसके कदमों में है और मन्ज़िल उसके समीप है शान्ति शिखर की।

# भजन

तर्ज:-तेरे चेहरे से नज़र... ।।

टेक:-सतगुरु की तू भक्ति कमा ले, जीवन संवर जायेगा,
हर स्वांस में गुरु गुण गा ले, जीवन संवर जायेगा ।

१-भक्ति जग में उत्तम पदार्थ,
बिन भक्ति यह जन्म अकारथ ।
सुखी दुनिया में भक्ति वाले ।।

२-जिस जिस ने भी भक्ति कमाई,
जीवन उसका बना सुखदायी ।
तू भी नाम में जीवन रंगा ले ।।

३-व्याप सकेगी तुझे जग की न माया,
जिस माया ने सारा जगत भुलाया ।
इसके फंदे से रूह को छुड़ा ले ।।

४-कर ले भक्ति दासनदासा,
जीवन तो घुलना है जैसे पताशा ।
कुछ जीवन का लाभ उठा ले ।।

# निराला अमृत

सत्सङ्ग एक निराला अमृत है। यह एक ऐसा अमृत का प्याला है, जिसे पीकर मनुष्य अमर हो जाता है। सत् का अर्थ है परमात्मा। उस परमात्मा को जानने वाले, जो महापुरुष हैं उन्हें सत्पुरुष कहते हैं। प्रभु-प्राप्ति का जो उपाय है उसे सत्पथ या सत्मार्ग कहते हैं। प्रभु-प्राप्ति के लिए किए गए कर्म सत् कर्म कहलाते हैं। प्रभु की कथा को 'सत्य कथा' कहते हैं। इसीप्रकार जिस कथा में प्रभु की महिमा का गान हो, उसको पाने पर ही विचार हो अथवा सत्य वस्तु की ही परख व पहचान कराई जाए तथा सत्पुरुषों की संगति से लाभ प्राप्त किया जाए उसे सत्सङ्ग कहते हैं। अतः कहा है-

सत्संगत कैसी जानियै, जिथे इको नाम बखानियै।

जहाँ केवल प्रभु नाम की चर्चा हो यानि सांसारिक मोह-माया की व्यर्थ कोई वार्ता न हो उसे ही सत्सङ्ग कहते हैं।

सत्सङ्ग कल्पवृक्ष की छाया है। जैसे गर्मी से तपे प्राणी

को वृक्ष की छाया में आकर शान्ति अथवा शीतलता मिलती है, इसीप्रकार सत्संग में आकर भी मनुष्य के मन को सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। इससे जन्म-जन्म की मैल धुल जाती है और मन निर्मल हो जाता है।

सत्संग एक उत्तम तीर्थ है। उत्तम भाग्यों से ही सत्संगति की प्राप्ति होती है या जिन पर प्रभु की विशेष कृपा हो वही सत्संग से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सत्संग जैसी दुर्लभ वस्तु प्रत्येक को नहीं प्राप्त हो सकती। महापुरुषों का कथन है कि सत्संग की एक घड़ी ही तप के हज़ारों वर्षों से बढ़कर है, क्योंकि तप से मन में अहंकार और क्रोध जैसे भयानक विकार आ जाने का भय है किन्तु सत्संग से अहंकार और क्रोधादि विकारों का नाश होता है। मनुष्य में नम्रता का समावेश होता है और हृदय में प्रभु-प्रेम उत्पन्न होता है। परिणाम स्वरूप प्रभु-प्राप्ति की लगन के अंकुर फूटते हैं। देख सुन कर ही मनुष्य की प्रकृति व चाल बदलती है।

एक संगतरे बेचने वाला सड़क पर आवाज़ लगा रहा था–'अच्छे संगतरे। अच्छे संगतरे।" कुछ लोगों ने तो खाने के लिए खरीद लिए और कुछ संस्कारी आत्माओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि अच्छे संग से मनुष्य तर जाता है।

देवर्षि नारद जी भी अपने भक्ति-सूत्र में कहते हैं कि "भक्ति के मार्ग में कुसंग से बढ़कर कोई विघ्न नहीं और अच्छे संग से बढ़कर कोई सहायक नहीं है।"

संसार में उत्तम, श्रेष्ठ व अच्छा संग सन्त-सत्पुरुषों का है। उनकी संगति में आने से वर्षों की यात्रा घण्टों में पूर्ण हो जाती है। सन्त तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं–

मुद मंगलमय सन्त समाजू ।
जो जग जंगम तीरथ राजू ॥

सन्तों का समाज आनन्द और मंगल रूप है, जो संसार में चलता-फिरता प्रयागराज है। घर बैठे-बिठाये लोगों को ज्ञान रूपी गंगा का स्नान कराता फिरता है।

तुलसीदास जी सन्तों की संगति से प्रभावित होकर फिर कहते हैं–

मेरे मन प्रभु अस विश्वासा,
राम ते अधिक राम कर दासा।
राम सिन्धुघन सजनधीरा,
चन्दन तरु हरि सन्त समीरा ॥

अर्थ–मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि भगवान से भी अधिक श्रेष्ठ एवं महान उनके दास अथवा सन्त हैं। भगवान यदि समुद्र हैं तो वे बादल हैं। यद्यपि बादल समुद्र से ही जल लेकर वर्षा करते हैं; फिर भी संसार के लिए बादल ही विशेषत; लाभदायक हैं। क्योंकि ये न होते तो समुद्र का जल

हमें घर बैठे-बिठाये कैसे मिलता ? दूसरे समुद्र का जल खारा है; किन्तु बादलों के द्वारा वही मीठा बनकर सब की प्यास बुझाता है। इसी प्रकार प्रभु यदि चन्दन के वृक्ष हैं तो सन्त पवन के समान हैं, जो इसकी सुगन्धि को दसों-दिशाओं में फैलाकर सब वृक्षों को चन्दन बना देते हैं।

श्री रामचन्द्र महाराज जी ने भी भीलनी से कहा है-

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।

अतः सन्तों की संगति में जाने से ही उद्धार होता है। "सन्त की महिमा वेद न जाने।" सरस्वती भी सन्तों की महिमा कहने से सकुचाती है। जहाँ वे रहें वही तीर्थ और जो कुछ वे कहें वही शास्त्र हैं।

नवधा भक्ति में पहली भक्ति सन्तों का संग ही बतलाई है। दूसरी भक्ति सत्सङ्ग और प्रभु-चर्चा में प्रीति है। सन्तों की संगति में जाकर ही मनुष्य को सत्-असत्, अपने-बेगाने अन्धेरे और प्रकाश का ज्ञान अथवा लक्ष्य की पहचान होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी चोर भाग जाते हैं। कुमति का नाश होता है और सुमति प्राप्त होती है। मलिन मन निर्मल हो जाता है।

मज्जन फल देखिय ततकाला।
काक होहि पिक बकउ मराला॥

अर्थात् कौवे के समान स्वभाव वाला व्यक्ति सन्तों

की संगति में गोता लगा ले तो उसकी वाणी कोयल के समान मधुर हो जाती है, जिसे सुनना सब पसन्द करते हैं; किन्तु यदि कौवा आकर बोले तो सभी उसे उड़ा देते हैं। वही कौवा सत्सङ्ग रूपी गंगा में गोता लगाने पर कोयल बन जाता है। इसीप्रकार बगुला यदि सत्सङ्ग रूपी गंगा में गोता लगाए तो वह हंस बन जाता है तथा इसके मुँह में ऐसी तासीर हो जाती है कि दूध पी लेता है और पानी का त्याग कर देता है। सत्संगति के प्रभाव से ही बगुला मछली का त्याग कर मोती खाने लग जाता है।

सुनि आश्चर्य करै जनि कोई।
सत्सङ्गति महिमा नहीं गोई ॥

सन्त तुलसीदास जी कहते हैं कि इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सत्संग में आकर कौवा कोयल और बगुला हंस बन जाता है। सत्सङ्ग की महिमा अवर्णनीय है। बाल्मीकि जी पहले रत्नाकर डाकू थे। सन्तों की संगति के परिणाम स्वरूप ही वे डाकू से बाल्मीकि ऋषि ही नहीं अपितु-ब्रह्मऋषि बन गए। सत्संगति से मनुष्य की वृत्ति में महान परिवर्तन हो जाता है।

॥ दोहा ॥

जाइये शुभ सत्संग में, पाइये निर्मल गंग।
श्रद्धा भक्ति सुकर्म की, मन में लाए उमंग ॥

सत्संग जीवन का स्रोत है। इसमें नहाने से मन की मैल धुल जाती है अथवा मन निर्मल हो जाता है। विवेक की जागृति होती है। निर्मल मन में ही आत्म साक्षात्कार होता है अथवा प्रभु-प्राप्ति होती है। अतः मानव जीवन के लक्ष्य को सिद्ध किया जा सकता है।

एक बार एक मनुष्य एक महात्मा जी के पास उपदेश लेने गया। महात्मा जी ने उसे कहा कि "नदी के किनारे फुलवाड़ी है। जाओ इस लकड़ी की छलनी से उसमें पानी दे आओ।" उसने कहा कि इसमें तो पानी नहीं टिकेगा। पुनः महात्मा जी ने कहा, "बस यही ले जाओ और जो कहा है वही करो।" अतः वह छलनी लेकर चला गया। सारा दिन छलनी पानी में डालता रहा परन्तु जब बाहर निकाले तो खाली। संध्या समय हो गया, महात्मा जी आये तो देखा कि पुष्प-वाटिका सूखी पड़ी है। आते ही उन्होंने पूछा "पानी क्यों नहीं दिया ?" उसने कहा, "मैंने पहले ही कहा था कि इससे पानी नहीं दिया जाएगा।" फिर महात्मा जी ने पूछा, 'कोई लाभ तो हुआ होगा ?" उस प्रेमी ने कुछ देर सोचने के बाद उत्तर दिया, 'जी महाराज, छलनी की मैल उतर गई है।" महात्मा जी ने उसे उपदेश दिया कि इसी प्रकार सत्सङ्ग से मन रूपी छलनी की मैल धुल जाती है।

कई जन्मों के किए हुए संग्रहित कर्म सत्संगति के प्रभाव से अथवा नित्यप्रति की रगड़ से धुल कर साफ़ हो

जाते हैं जो जन्म-जन्मांतर से अन्तःकरण में संचित पड़े हैं, जो चौरासी लाख योनियों का बीज और मसाला है।

संसार में प्रत्येक वस्तु का पृथक-पृथक प्रभाव होता है। जैसे आग के पास बैठने से गर्मी लगती है और पानी के पास बैठने से ठण्डक। धन के साथ मन लगाने से लोभ बढ़ता है। परिवार के साथ नेह लगाने से मोह पैदा होता है। इस प्रकार संगति का प्रभाव अवश्य प्रभावित करता है।

अतः सत्पुरुषों की संगति में आने से जीव सत्यता की ओर अग्रसर होता है। वास्तविकता का ज्ञान होता है; जिस के परिणाम स्वरूप मनुष्य सत्-चित् आनन्द स्वरूप प्रभु को पाकर अपने जीवन को सफल बना लेता है। यही मनुष्य जन्म का ध्येय है।

# भजन

तर्ज़–सतगुरु जी सुखधाम......

टेक–मंगलमय तेरा नाम,
प्रभो जी तुम पर-उपकारी।
आये शरण जो इन्सान,
हरो संकट दुःख भारी॥

१–नाम आधार देके भव-सिन्धु पार करो।
बन के सहायक सच्चे, परम उद्धार करो,
पूर्ण करुणा के धाम, सुयश गाथा वेद उचारी॥

२–जग से जो तोड़ बन्धन तुझसे ही जोड़े नाता,
नाम आराधन करे प्रेम के रंग राता।
बख्शे अपना धाम, विरद की करे रखवारी॥

३–झूठी जगत की रचना, माया का खेल सपना,
केवल हृदय में सच्चे, नाम की प्रीत रखना।
दिया तूने ये साचा ज्ञान, जन्मों की बिगड़ी सँवारी॥

४–तेरे उपकार गीत, गाऊँ करूं नित चर्चा,
दीन-दयाल प्रभो, ऐसा सौभाग्य बख्शा।
दास किया पूर्णकाम, बना कर दर का भिखारी॥

# सार्थक जीवन

काल कर्म और मन-माया रूपी भवसागर से पार होने के लिए इस कठिन कुटिलता युक्त कलियुग के जीवन में एकमात्र भक्ति पथ ही सरलोत्तम मार्ग है। इस पर चलते हुए मनुष्य शीघ्र और सरलता से अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है। सन्त-उपदेशों के अनुसार इस सरल व सहज भक्ति पथ में मुख्यत: दो अंग हैं–एक सेवा, दूसरे नाम। दोनों अंग एक दूसरे के पूरक हैं। सेवा जीवन को निष्काम कर्ममय बना कर भक्त के चित्त से स्वार्थ और अहंता की मैल को धो देती है तथा नाम-सुमिरण उसके चित्त को स्थिर करके आत्म-दर्शन तक पहुँचाता है। प्रभु-नाम तथा कुल-मालिक परब्रह्म का तत्त्व-स्वरूप वह सार-शब्द है जो कि वाणी-इन्द्रिय और मन-बुद्धि की सीमा से परे है। यह एक ऐसा अनमोल रत्न है जिसे पाकर जीवात्मा जन्म-जन्मांतर की दरिद्रता को नष्ट करके अपने राज्य और खज़ाने को पाया हुआ अनुभव करती है। यह ध्वन्यात्मक नाम कोई साधारण वस्तु या कर्म उपासना नहीं। इसको ग्रहण करने के लिए पूर्व जन्मों की बड़ी पुण्य कमाई की आवश्यकता है अर्थात् चित्त में शुभ

संस्कारों की बहुलता होने पर ही इसे ग्रहण करने की जिज्ञासा पैदा होती है। इसका अर्थ यह है कि यह सार नाम हर वासना प्रवृत्त व्यक्ति नहीं ग्रहण कर पाएगा। चित्त की निर्मलता और शुभ संस्कार युक्त हृदय में ही यह सार नाम बसता है।

इस समय कलियुग का मलिन और कुटिल वातावरण चहुँ ओर छाया हुआ है। मनुष्य का मन सहज में ही मायावी प्रलोभनों की ओर आकृष्ट हो जाता है। आँख, कान, मुख वाणी आदि इन्द्रियों के द्वारा रात दिन मायावी बहिर्मुखी संस्कार ही प्रविष्ट होते जाते हैं। ऐसे वातावरण में रहते हुए यदि मनुष्य नाम-सुमिरण में चित्त को एकाग्र करना भी चाहता है तो उसे बड़ी कठिनता प्रतीत होती है।

अतः इस बात पर विचार करते हुए जिज्ञासु को इस भक्ति-पथ के प्राथमिक और सरल उपाय को ही सर्वप्रथम ग्रहण करना चाहिए। जैसा कि पहले वर्णन हुआ है भक्ति पथ के दो मुख्य अंग हैं–एक सेवा और दूसरे नाम। मन को निर्मल और शुभ संस्कार युक्त बनाने के लिए साधक यदि इस सेवा-अंग को दृढ़ता से अपनाएगा तो वह बहुत जल्दी अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा में भी आगे कदम बढ़ा सकेगा और उसमें दृढ़ रह सकेगा अन्यथा यदि वह इस सेवा अंग को प्राथमिकता न दे कर दूसरे सूक्ष्म-अंग की साधना में प्रवृत्त होने की चेष्टा करेगा तो उसे संभवतः अधिक कठिनाई और संघर्ष का ही सामना करना पड़ेगा। यद्यपि इस द्वितीय

सुमिरण-साधन को भी हर अवस्था में साथ रखते हुए ही यह आध्यात्मिक यात्रा करनी पड़ती है तथापि सर्व प्रथम मन को निष्काम और निर्मल बनाने के लिए यह सेवा-कसौटी एक आवश्यक, सरल और प्राथमिक अंग है।

सेवा परमार्थ रूप है और यह परमार्थी सन्तों के दरबार में ही मिल सकती है। सतसंगति के बिना न तो मनुष्य निष्काम हो सकता है और न ही सेवा के वास्तविक भाव को समझ पाता है। सच्ची सेवा में निश्छलता के साथ-साथ श्रद्धा प्रीत का होना अनिवार्य है–

॥ दोहा ॥

दासा तन हिरदै बसै, साधुन सों आधीन।
कहैं कबीर सो दास है, प्रेम भक्ति लौ लीन ॥

परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है कि जो भक्त अपने मन में दासभाव धारण करके सदा सन्तों की आधीनता में रहते हुए सेवा करता है, वही वास्तव में सच्चा सेवक अथवा भक्त है। अपने इस सेवा भाव से वह शीघ्र ही प्रेम भक्ति में लवलीन हो जाता है अर्थात् नाम रूपी अनमोल रत्न को पा लेता है।

दासभाव की सेवा में वह निश्छलता और निर्मानता भरी होती है जो कि सन्त-सत्पुरुषों को अवश्य ही अपनी ओर आकृष्ट कर द्रवित कर लेती है। जब सेवक भक्त अपने

धन, बल, उच्चकुल, विद्या, राज्यादि सभी पदार्थों का मान त्याग कर इस निर्मान सेवा में तत्पर हो जाता है तो उसे स्वयं ही अपने चित्त में निर्मल प्रेम और सच्चे आनन्द का अनुभव होने लगता है। यदि इन सब वस्तुओं में से किसी भी वस्तु या गुण का मान हृदय में बना रहता है तो सन्त कृपा जैसी दुर्लभ दात मिलने में विलम्ब हो जाता है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी इस विषय पर आगे प्रसंग बढ़ाते हुए धर्मराय-युधिष्ठिर-यज्ञ और सन्त श्वपच सुदर्शन कथा वर्णन करते हैं–

॥ सद्गुरु उवाच ॥

धर्मिन आगे सुनहु कहानी ।
यज्ञ युधिष्ठिर कहौं बखानी ॥
यक दिन आप युधिष्ठिर राई ।
अर्जुन लै द्वारिका सिधाई ॥
सोच विवश मुख ग्लानि छाई ।
हरि सन युधिष्ठिर कह्यो जाई ॥
माधव मो चित्त नाही चैना ।
स्वप्न भयंकर कहत बनैना ॥
करिये ताकर कवन उपाऊ ।
माधव मन सन्देश नसाऊ ॥

महाराजा युधिष्ठिर ने अपने पांडव भाइयों की सहायता से महाभारत का कठोर युद्ध जीत कर हस्तिनापुर का साम्राज्य तो पा लिया किन्तु उनके चित्त में अठारह अक्षोहिणी सेना में मारे गए क्षत्रियों की जीव-हत्या का दृश्य बारम्बार स्मरण हो आता था। रक्तपात, चीत्कार, अबला नारियों का करुण क्रंदन सब कुछ उसे असह्य वेदना पहुँचा रहा था। अशान्त व्याकुल और संतप्त हृदय को लेकर वह द्वारिका नगरी में श्री कृष्ण जी के पास पहुँचे और बिनय की–हे भगवन ! अगणित जीवों की हत्याओं का दृश्य स्मरण आते ही मेरा मन संतप्त हो उठता है। रात्रि में भयंकर स्वप्न आते हैं। साम्राज्य-सम्पदाओं के होते हुए भी मेरा चित्त बहुत दुःखी है। हे माधव ! मेरे मन की ऐसी संतप्त अवस्था को बदलने के लिए आप कुछ उपाय कीजिए। जिस तरह मुझे शान्ति प्राप्त हो सके वह साधन बतलाइये।

॥ माधव उवाच ॥

कहैं माधव तुम कुटुँब संहारा ।
हत्या गोत्र कलंक अपारा ॥
अश्वमेध यज्ञ ता प्रशमन हित ।
करिय उपाय यहि मोरे चित ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

सुनि अर्जुन अस कहिबे लीना ।

तुमरे कहे युद्ध हम कीना ।।
भल तुम कीन्ही कृष्ण मुरारी ।
चलहु करिअ अब मख तैयारी ।।
तुमरे बिना काज नहिं पूजे ।
तुम हितचिन्तक बन्धु नहिं दूजे ।।
जा विधि होय हमार भलाई ।
कीजे हरि पुनि सोइ उपाई ।।

श्री कृष्ण माधव जी बोले—हे पाँडव युधिष्ठिर, तुमने महाभारत युद्ध में अपने कुटुँब का संहार किया है। कुल-हत्या के दोष से कलंक और कल्पना उत्पन्न हुए हैं। अनेकों प्राणियों का क्रंदन अन्तर्मन को व्याकुल कर रहा है अतः हे राजन् ! इसकी शान्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ कीजिए। मेरी राय में यही उपाय सर्वोत्तम है। यज्ञ में पृथ्वी की समस्त सिद्ध-साधक मण्डली तृप्त होगी तभी इसकी सम्पन्नता समझी जाएगी। यह सुनकर भक्त अर्जुन अत्यन्त विस्मित हुआ और बोला—हे कृष्ण ! आपके कथन पर ही तो हमने युद्ध किया था। अब जो हुआ, चलिये यज्ञ की तैयारी करें। आप के बिना कार्य सिद्ध नहीं होगा। आप ही हमारे हितचिंतक और बन्धु हैं जैसे भी हमारी भलाई हो वही कीजिए। आप ही अब हमारा यज्ञ भी सम्पन्न करवाइए।

॥ चौपाई ॥

चले कृष्ण पाँडव संग तवहीं ।
करी यज्ञ सामग्री सबहीं ॥
रचयो हस्तिनापुर में यज्ञा ।
जुरे ऋषि कवि ज्ञानी तज्ञा ॥
पंडित वेदन कर अभ्यासी ।
योगी तपसी सिद्ध उदासी ॥
जटिल दिगंबर अरु ब्रह्मचारी ।
दूध पिवंता शाक अहारी ॥
कृष्ण घंट यक अधर लगाई ।
बाजै मख पूरण फल पाई ॥
पांडव सब विधि सेवा करहीं ।
कृष्ण केरि अज्ञा अनुसरहीं ॥

श्री कृष्ण जी पांडवों के साथ चल दिए । यज्ञ की समस्त सामग्री एकत्र करवाई । हस्तिनापुर में यज्ञ आरम्भ हुआ । ऋषि-मुनि, ज्ञानी-कवि, वेदपाठी-पण्डित, योगी-तपस्वी, सिद्ध वैरागी, दिगंबर-संन्यासी, ब्रह्मचारी दुग्धाहारी और शाकाहारी तपस्वी एकत्र होने लगे । पांडव इन सब सिद्ध साधकों की बड़ी

विनम्रता से सेवा करते हैं और अपने इस महान शान्ति यज्ञ की कुशल-सम्पन्नता की प्रार्थना करते हैं। श्री कृष्ण जी ने एक घण्टा आकाश में स्थापित करवा दिया और बोले कि हे पांडवो, इस शान्ति यज्ञ की पूर्णत: और सम्पन्नता तभी समझना जबकि यह घंटा सात बार स्वयं ध्वनित हो। पांडवों ने आज्ञा शिरोधार्य कर ली सदा उनकी आज्ञा में रहने लगे।

॥ चौपाई ॥

प्रेम सहित अतिथिन जेंवावैं ।
व्यंजन नित्य नवीन करावैं ॥
जेवें द्विज मुनि केर समाजा ।
पूजी अवधि घंट नहिं बाजा ॥
पांडव मन भौ सोच अपारा ।
बाजै घंट कवन प्रकारा ॥
जाइ कृष्ण ढिग विनती लाई ।
काह कसर नहिं घंट बजाई ॥
कृष्ण धरयो तब अंतरध्याना ।
बोले सुनिये राय सुजाना ॥
निरगुण भक्त न जैवैं जो लौं ।
बाजै घंट न कबहुँ तो लौ ॥

सभी पांडव सभी अतिथियों को प्रेम सहित भोजन करवाते हैं, नित्यप्रति नए-नए व्यंजन तैयार करके ऋषि मुनि और ब्राह्मणों को अर्पण करते हैं। यज्ञ की सभी क्रियाएँ सम्पूर्ण हो गईं। अवधि पूर्ण होने पर भी आकाश में घंटा नहीं बजा। पाँडवों के मन में बहुत चिंता हुई कि यह घंटा किस प्रकार बजेगा। महाराजा युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण जी के समीप जाकर विनय की–हे भगवन्! हमारे यज्ञ में क्या त्रुटि रह गई है जो कि घंटा अभी तक नहीं बजा। श्री कृष्ण जी ने अन्तर में ध्यान लगा कर देखा और बोले–हे राजन, घंटा न बजने का कारण सुनो। पृथ्वी के सभी ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधु भोजन कर चुके किन्तु एक निर्गुण ब्रह्म के उपासक भक्त अभी इस यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुए। जब तक वे भोजन नहीं करेंगे तब तक घंटा नहीं बजेगा।

॥ चौपाई ॥

पांडव कहै लखावौ सैना ।
निरगुन भक्त परखि किमी लेना ॥
कहँवा निरगुन भक्त विराजै ।
कहयो जाहु वाराणसि आजै ॥
श्वपच सुदर्शन सन्त सुजाना ।
ताहि जिमावो करि सनमाना ॥

महाराजा युधिष्ठिर ने पूछा–हे कृष्ण, उस निर्गुण भक्त

का क्या परिचय है ? हम उसे कैसे परखें ? वह निर्गुण भक्त कहाँ विराजमान हैं ?

श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया–आज ही वाराणसि काशी जी में जाओ। वहाँ पर एक श्वपच सुदर्शन नामक सुजान सन्त रहते हैं। उन्हें बड़े सन्मान सहित भोजन करवाओ तभी यज्ञ पूर्ण होगा।

भीम काया सुनत धायो, वायुसुत वाराणसि ।
जाइ कीन्हो शोच तुरतै, सन्त वसु कवनै दिशी ॥
खोज थाकों नगर, बाहिर श्वपच कुटिया छाइया ।
तहँ पहुँचयो भीम पांडव, अरज ता कहँ लाइया ॥
चलहु सन्त सुजान, करहू मख पावन अबै ।
जहँ कृष्ण भगवान, राय युधिष्ठिर टेरिया ॥

आज्ञा पाते ही भीमसेन तुरन्त वाराणसि नगरी जा पहुँचा और स्थान-स्थान पर सन्त श्वपच सुदर्शन का पता पूछा। नगर में जब ढूँढते ढूँढते थक गया तो नगर के बाहर निर्जन वन में एक कुटिया दिखाई दी। वहाँ जा कर सन्त सुदर्शन के दर्शन किये और चरणों में प्रणाम कर के विनय की--हे मतिमान सन्त हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर ने एक यज्ञ रचा है उसे पवित्र करने के लिए राजा और श्री कृष्णजी

ने आप को आमन्त्रित किया है। आप वहाँ चलें और यज्ञ को सम्पन्न करें। सच्चे सन्त सदा सच्ची श्रद्धा-प्रीति निर्मान सेवा को ही हृदय से स्वीकार करते हैं। भीमसेन के हृदय में अपने महान बल और राज्य सम्पदा का अभिमान था। सन्त यह बात अच्छी प्रकार जानते थे अतः उन्होंने दर्पहारी उत्तर ही दिया।

॥ सन्त श्वपच उवाच ॥

सन्त कह तहँ कहा मम काजा।
सेवौं नहिं नृपन कर नाजा ॥
राजा लोग बड़े हत्यारे।
तुम निज कर पुनि बन्धु संहारे।
राज द्वार नित मान बड़ाई।
ताके निकट साधु नहिं जाई ॥
मैं नहिं निजकर जन्म बिगारौं।
नहिं आवों तुम भीम सिधारौ।

भीमसेन की विनती सुन कर निष्कामी सन्त श्वपच बोले—मेरा राजद्वार पर क्या कार्य सिद्ध होगा। मैं राजाओं के दूषित अन्न का सेवन नहीं करूँगा। राजा लोग तो बड़े स्वार्थी और हत्यारे होते हैं। वे अपने राज्य धन हेतु अपने निकट के बन्धु सम्बन्धियों का भी वध कर देते हैं। इसके अतिरिक्त राज दरबार में मान बड़ाई का ही बोल बाला रहता है। भजनानंदी निष्कामी साधु वहाँ नहीं जाते। वहां जाकर मैं अपना जन्म नष्ट नहीं करना चाहता। हे भीम, आप चले जाइये।

॥ भीम उवाच ॥

सुनत भीम क्रोधानल जरेऊ ।
नहिं कछु वचन कृष्ण सन डरेऊ ॥
पलटि चल्यो हस्तिनापुर आयो ।
समाचार सब कृष्ण सुनायो ॥
कहै भक्त है बड़ हंकारी ।
निन्दे नृपन कहै हत्यारी ॥
राज दुआर न जावौ कहेंऊ ।
सुनतहि कृष्ण विहँसिमन रहेऊ ॥

श्वपच संत का उत्तर सुनते ही भीमसेन का हृदय क्रोधाग्नि से जलने लगा किन्तु मुख से कुछ नहीं कहा क्योंकि वह श्री कृष्ण जी से डरता था। मौन हो हस्तिनापुर में आ पहुँचा और सम्पूर्ण वृत्तान्त श्री कृष्ण जी को सुना दिया। भीमसेन बोला कि यह श्वपच-भक्त बड़ा ही अहंकारी है। राजा लोगों को हत्यारा कह कर निन्दा करता है।

॥ श्री कृष्ण-उवाच ॥

सन्त बिना नहिं बनिहै काजा ।
कहत भये केशव महाराजा ॥
निरगुण सन्त होहिं निहकामी ।
लाहु भीम करि विनय नमामी ॥

चलयो भीम पुनि काशी आयो ।
सन्त चरण लगि शीश नवायो ।।

।। भीम उवाच ।।

चलहु साधु राव पुकारी ।
चाहै दरशन कृष्ण मुरारी ।।

।। संत श्वपच उवाच ।।

कहै सुदरशन कपट गुवारा ।
का चाहत हरि दरश हमारा ।।
काहि युधिष्ठिर तुमहि पठावा ।
गोत्र हते शिर पाप चढ़ावा ।।

भीमसेन की बात सुनकर श्री कृष्ण जी ने कहा कि इन निर्गुण निष्कामी सन्त के बिना तो तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा । हे भीम, जैसे भी हो उन्हें विनती-अनुरोध कर के ले आने का पूरा प्रयास करो । यह सुन कर भीम पुनः काशी नगरी में आया । सन्तों के चरणों में मस्तक झुकाया और विनती की—हे साधो, कृपा करो । महाराजा युधिष्ठिर और श्री कृष्ण महाराज आपके दर्शन चाहते हैं । इस बार भी संत श्वपच ने वही उत्तर दिया कि कठोर कर्म में प्रवृत्त रहने वाले राजाओं के यहाँ हम नहीं आएँगे ।

कोपे भीम कहे मन माही ।
केतिक गर्व शुद्र हिय आही ।।
करौं एक जो गदा प्रहारा ।
पठवौं तुरत साधु पतारा ।।
लखयो सन्त जब भीम विचारा ।
कहत भए सुन राजकुमारा ।।
आए भीम तुम दो वार यहाँ को ।
चलो भीम मैं चलौं तहँ को ।
लै आवौं मैं दंड कमण्डलु ।
तुम धरि सुमरनि मम आगे चलु ।।
अस कहि मेलि सुमरनि भुवि पर ।
गए श्वपच कुपरी भीतर ।।

सन्त के वचन सुनकर भीमसेन बहुत क्रोधित हुआ । सोचने लगा कि इस शुद्र के मन में कितना गर्व है । अभी एक गदा प्रहार करूँ तो तुच्छ साधु पाताल में समा जाय । किन्तु सन्त साधारण साधु नहीं थे । अन्तर्यामी थे । भीम के हृदय की बात जान गए । कुछ समय विचार करके बोले– हे राजकुमार, तुम दूसरी बार मेरे पास आ रहे हो । चलिए आपके साथ चलता हूँ किन्तु शर्त यह है कि मेरी यह सुमरनी-माला आप भूमि से उठा कर आगे-आगे चलो । पीछे मैं चल पड़ूँगा । मैं दण्ड-कमण्डलु उठा कर आता हूँ––इतना कहकर सन्त कुटिया के भीतर चले गए ।

भीम सुमरनि कहँ उठावत, भयो अचरज अस तहाँ ।
उठी सुमरनि भूमि ते नहीं, बलि वृकोदर थकि रहा ।।
बहुत कम्पित भीम भीतर ते पधारे सन्त हो ।
भीम कस नहिं चले आगे, का विचारत अन्त हो ।।
भीम कही तब बात, माला भू ते ना टरै ।
भयो थकित बहु गात, चकित चित्त मम थिर नहीं ।।

भीम ने प्रसन्न होकर गर्व के साथ सुमरनी-माला को उठाना चाहा किन्तु जैसे ही उसने माला को हाथ लगाया तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही । माला भूमि से हिलती भी नहीं । महाबली भीम ने पुनः ज़ोर लगाया किन्तु माला को तिल भर भी न हिला सका । भीम बल लगाते-लगाते थक कर कम्पित हो रहा था तभी सन्त भी भीतर से आ गए और मुस्कराते हुए बोले कि हे भीम बली, अभी तक तुम आगे क्यों नहीं बढ़े । भीम बोला—यह माला तो मुझ से हिलती भी नहीं । मैं थक कर चूर हो चुका हूँ मेरा चित्त भी व्याकुल हुआ जा रहा है ।

।। सन्त उवाच ।।

कहे सन्त सुनिये भूपाला ।
सके सुमरनि नहिं तुम टारा ।।
कस तुम मोहि पतार पठावहु ।
सुनत भीम तब भौ लज्जित बहु ।।
गिरयो चरण तर बहु अकुलाई ।
छमहु मोर अपराध गुसाईं ।।

भीम की यह दशा देख कर सन्त-सुदर्शन जी बोले–हे नरेश, तुम एक छोटी सी मेरी माला को तो भूमि से हिला नहीं सकते फिर मुझे कैसे पाताल में समाविष्ट कर दोगे। भीम लज्जित हो उठा। चरणों में गिर कर क्षमा याचना की और निराश होकर हस्तिनापुर लौट आया।

हस्तिनापुर पहुँच कर भीमसेन ने महाराज युधिष्ठिर और श्री कृष्ण जी के समक्ष सन्त को ले आने में अपनी असमर्थता वर्णन की। भगवान श्री कृष्ण जी ने कुछ समय विचार कर कहा, हे राजा युधिष्ठिर, तुम स्वयं जाओ। सब प्रकार का बल मान आदि का भाव त्याग कर निश्छल व श्रद्धा से उन्हें प्रसन्न करो। यज्ञ की सम्पन्नता का उन सन्त-श्वपच के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

॥ दोहा ॥

जाहु युधिष्ठिर वेग से, तुम आनो गहि पाँय।<br>
आज्ञा मान चले तब, आये युधिष्ठिर राय॥

क्रमशः

# कविता

नाम का महात्मय भारी, दिव्य रत्नों का भण्डार।
नाम सत्य मार्ग दिखाने वाला है मानो मीनार ॥

नाम ही भव की है नौका, नाम भवसिन्धु का तीर।
नाम तोड़े विकट बन्धन, तोड़े चौरासी ज़ंज़ीर ॥

नाम के सुमिरण ने किया, लाखों पतितों का उद्धार।
नाम की स्वर लहरी मादक, करती अमृत रस संचार ॥

नाम रस है वह रसायन, रोग मन के होते क्षार।
शमन करता त्रिविध तापों को, यह मंगलों का आगार।

मध्य वेदों में की अंकित, नाम की गरिमा अपार।
नाम स्मरण बल से रखा, शेष ने सर जग का भार ॥

नाम के प्रकाश स्तम्भ में, कर गए जो मन्ज़िल सफ़र।
सुर्खरू दरगाह में उस मालिक की, हो गए वह बशर ॥

है अलौकिक नाम महिमा इसका अद्भुत चमत्कार ।
बाल्मीकि ने जपा किया ब्रह्म का साक्षात्कार ॥
महर्षि का पा लिया पद स्वांसों में जप जपके नाम ।
बन गए महान लाखों नाम रस के पी पी जाम ॥
नाम के प्रताप से पाई दिव्य दृष्टि बेशुमार ।
राम का अवतार जाना वर्ष पहले दस हज़ार ॥
नाम के महत्त्व को किया गायन वेदों ग्रन्थों ने ।
भाव पूर्ण हो के गाई कीर्ति सभी सन्तों ने ॥
है रसास्वादन किया जिस तृप्त निश्चय हो गया ।
मोह मालिन्य जन्मों का वह नाम सलिल से धो गया ॥
शुद्ध अन्तःकरण बनाता पापों का करता विनाश ।
रत करता श्रेष्ठ कर्मों में है इसका यह प्रताप ॥
विदित है संसार को दिया पातकी गनका को तार ।
नाम दीपक मणि सुन्दर भरता त्रिभुवन में उजियार ॥
नाम का पीके रसायन जग से उपरत हो गए ।
मुक्त बन्धन हो गए, जो नाम रस में खो गए ॥

नहीं उन्हें भाते विषय सुख पी गए जो नाम जाम ।
हो गए मानों वह जिज्ञासु जगत में पूर्ण काम ।।

शृंखला कटी भव गवन की नाम ने दी विपदा टार ।
नाम के हथियार से किया पाँचों दुश्मनों का संहार ।

मार खाते वह न मन की नाम में जो जन बेदार ।
मानो वह अहोभाग्य प्राणी जन्म को जाते सुधार ।।

खोटी बुद्धि द्वेष से भी जप गए जो मीठा नाम ।
कंस रावण और भी कई नारकीयों के प्रमाण ।।

दीन्हीं उनको सद्‌गति भी और दिया अपना धाम ।
है प्रमाणित बात ग्रन्थों सन्तों की कहती ज़ुबान ।।

आत्मिक आनन्द शाश्वत् दिव्य सुखों का प्रतीक ।
पाता नित्य सुख वही जो नाम से करता है प्रीत ।।

मन्ज़िले मकसूद पाता द्वन्द्वों को लेता निवार ।
नाम में जो स्वाँस रतनों की सतत करता संभार ।।

जन्म को कर गए सकार्थ भरके सौरभ नाम का ।
कर गए वह काम प्राणी आत्मिक कल्याण का ।।

नाम बिन कल्याण रूह का है अनिश्चित सी यह बात।
नाम बिन सुधरे न हरगिज़ जीवों के बिगड़े हालात ॥

जिस्म के हर रोम में जिनके गुँजाती नाम धुन ।
हो गए वह धन्य जो नाम से हो गए सम्पन्न ॥

सत्य यह सन्देश धुर का सन्त देते बार बार ।
नामी प्यारा इष्ट को, है इष्ट को नामी से प्यार ॥

नाम वह जो सतगुरु से, प्राप्त करता सिर के भाव ।
डोलती भव लहरियों में, नहीं कभी फिर उसकी नाँव।

नाम में सराबोर हो, उन्मत्त रहता ध्यान में ।
निष्कृति उसकी है निश्चित, निरत जो इस काम में ॥

स्वाँसों की अनमोल पूंजी, खर्च करता जप के नाम ।
वह हज़ूरी में प्रभु की, प्राप्त करता है सम्मान ॥

नहीं झुकानी पड़ती उसको आँखें लज्जा से हर बार ।
भर गया नस नस में अपनी नाम का जो साचा प्यार॥

अखिल ब्राह्मांडों का नायक, नाम का सब को अधार ।
नाम धन किया प्राप्त जिस पा गया मंज़िल का पार॥

यह टिकट परलोक की, करते हिदायत सन्त जन।
ग्रहण कर शिक्षा यह भोले, पैदा करले यह लगन॥

नाम की तुलना में नहीं, सुख और इस संसार में।
बात यह आई यथार्थ सन्तों के विचार में॥

दास तू प्रवीन हो चतुराई से कारज सुधार।
ताकि बाजी जीती मानव की ये जन्म न जावें हार॥

# सन्त समागम

"सद्गुरु खोजौ सन्त, जीव काज जे चाहूहि"–यदि कल्याण मार्ग को अपनाना है तो सन्त सतगुरु की खोज करो। सन्त सतगुरु भक्ति मार्ग के अभिलाषी को उन्नति का पथ दर्शाते हैं तथा मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को सहयोगी बनकर पार कराते हैं। जिसप्रकार माली उद्यान में फूलों की मुस्कान भरने के लिए पौधों के साथ उगने वाली घास-फूस और झाड़ियों व काँटों की कटाई-छटाई करता रहता है; ताकि पौधे को पूरी खुराक मिले और फूल सुन्दर स्वस्थ बनकर खिलें। इसीप्रकार सतगुरु अपने शिष्य की अथवा भक्ति के अभिलाषियों की सम्भाल करते हैं। क्योंकि भक्ति में विघ्न डालने वाले अनेक शत्रु हैं।

सन्त पलटूदास जी शरीर को बाधक कहते हैं कि–

भंग भजन में करै, दुष्ट यह पेट है।
बिना भजन भगवान से नाहीं भेंट है॥

सतसंगति जब करै भूख तब मिटैगी ।
पलटू यही का यही इलाज फिकिर सब फटैगी ।।
खाला का घर नाहीं भक्ति है नाम की ।
दाल भात है नाहिं खाये के काम की ।।
साहिब का घर दूर सहज न जानिये ।
पलटू गिरे तो चकनाचूर वचन को मानिये ।।

भजन बन्दगी में भूख-प्यास ही बाधा उपस्थित करती है । आम दुनिया की हालत पर नज़र डाली जाए तो विदित होगा कि शरीर के भरण-पोषण की चिन्ता में ही प्राय: सभी दिन रात जुटे पड़े हैं । जिसप्रकार पेट की भूख अन्न के बिना नहीं मिटती, इसीप्रकार आत्मा की भूख अर्थात् भगवान से मिलाप भी बिना भजन किए नहीं हो सकता । सन्त महापुरुषों की संगति में जाकर भजन-बन्दगी का साधन पाकर ही आत्मा की तृप्ति होगी । सन्त पलटूदास जी कहते हैं कि केवल यही एकमात्र साधन है आत्मिक वृत्ति का । भगवान को पाना इतना सहल नहीं । इस मार्ग पर चलते हुए साथ में राहनुमा मिले तो रास्ता पार करने में कोई कठिनाई नहीं आती । सन्त-सत्पुरुषों के वचनों पर अमल करते जाना चाहिए, नहीं तो विघ्न बाधायें इसे पथ से दूर कर देती हैं ।

भक्ति मार्ग का जिज्ञासु जब भजन-बन्दगी में चित्त देता है अथवा वह मन्ज़िल की ओर बढ़ना प्रारम्भ करता है तो ऋद्धि-सिद्धियाँ उसकी चेरी बन जाती हैं । वह अपना

करतब दिखाने के लिए जिज्ञासु को विवश करती हैं। जब वह एक आध बार इनमें सफल हो जाता है तो जानता है कि मैंने सब कुछ पा लिया परन्तु उसे यह ज्ञात नहीं होता कि उसने जो कुछ पाया है वह भी सब मिथ्या है। उस का दिखावामात्र कर वह सब कुछ खो रहा है। जब पथ-प्रदर्शक राहनुमा साथ हों तो उसे रास्ता मिलता जाएगा अन्यथा अन्धकार में ठोकरें खाता और भटकता रहेगा।

सन्त सत्पुरुष परमार्थ पथ पर अनवरत अग्रसर रहते हैं। उन्हें किसी को दलदल में फँसते देख खेद होता है। वे चाहते हैं कि यदि भक्ति की राह पर कोई आ ही गया है तो वह अडिग पग मन्ज़िल पर पहुँचे, बीच में अटक न जाए, रुक न जाए। यही उनका उद्देश्य होता है और यही वे कर दिखाते हैं।

श्री परमहंस अद्वैत मत के महान प्रवर्तक श्री परमहंस दयाल जी अभी साधना काल में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते अथवा जंगलों में तपश्चर्या में मग्न होते और जब कभी चेतनावस्था में किसी अन्य भक्ति-अभिलाषी को पथ विचलित होते देखते तो उसे समझा-बुझाकर सत्सङ्ग द्वारा पथ पर ले आते तथा वह फकीर अथवा जिज्ञासु आप का आभारी बना रहता।

एक बार आप भसरौलिया गाँव से गुज़र रहे थे, सामने क्या देखा कि एक फकीर लोगों द्वारा घिरा हुआ है और लोग उसकी खूब आवभगत कर रहे हैं। क्योंकि वह

भी था तो आत्म-दर्शन के मग पर जाने का अभिलाषी। वह अपना चमत्कार दिखा क्या बैठा कि गाँव वाले उसे वहाँ से जाने न दे रहे थे। आपने उसकी जिज्ञासा को जान कर दूर से संकेत कर अपने पास बुलाया। गाँव वालों ने समझा कि अब ये इतने सुख एवं ग्रावभगत का सम्मान छोड़कर कहीं नहीं जा सकता।

ग्रापके संकेत पर वह शीघ्र ही आपके पास आया ग्रौर आपके साथ हो लिया। गाँव से दूर एकान्त स्थान वन को देखकर आप रुक गए ग्रौर पूछा—भई ! क्या बात थी ? उसने बतलाया कि आज से ग्राठ-दस वर्ष पूर्व ग्राठ दिन के उपवास के बाद इधर से गुज़र हुआ। एक ब्राह्मण ग्रधेड़ उम्र का था। उसने आवभगत की ग्रौर अच्छी तरह से खिलाया पिलाया। हमने सोचा इसकी मनोकामना पूर्ण कर देना हमारे बाएं हाथ का खेल है ग्रौर पूछ लिया कि तुम्हारे बाल-बच्चे व स्त्री खुश हैं ?

उस ब्राह्मण ने ग़मगीन होकर कहा कि महाराज ! न तो कोई बाल-बच्चा है और न स्त्री है। यहाँ तो केवल नकद दम का मुआमला है। जोरू न जाता और अल्ला मियां से नाता।

हमने पूछा—कुछ बाल-बच्चा की चाहना है ?

उसने कहा—महाराज ! एक भतीजा है उसीको लड़के की तरह मानता हूँ। यदि अपना घर बस जाए तो बात ही

क्या है। नहीं तो यही एक हीरा ही है।

हमने कहा–घर वसा लो। परमात्मा ने चाहा तो तुम्हारे दो लड़के होंगे। एक का नाम बद्रीनाथ और दूसरे का नाम केदारनाथ रखना। यह कहकर वहाँ से चल दिए।

संयोगवश आठ साल बाद पुनः इसी गाँव से गुज़रना हुआ। खेत पके पड़े थे। आसमान पर बादल छा गए और एक दो छींटे ओले के भी पड़ गए। सब लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। उस ब्राह्मण का साधु-महात्माओं में निश्चय हो गया था, इसलिए कुल गाँववालों को इकट्ठा करके शीघ्र ही हमें मार्ग में घेर लिया। अत्यधिक मिन्नत-समाजत करने लगे कि महाराज ! ऐसा कोई उपाय कीजिए कि यह ओला बन्द हो जाए, नहीं तो हम बेमौत मारे जायेंगे।

हमने कहा कि उपाय तो हमें कुछ नहीं आता अलबत्ता सब बैठकर राम-राम कहो। अगर मालिक को मन्जूर हुआ तो ओला बन्द हो जाएगा और बादल छंट जायेंगे।

उन सब लोगों ने राम-राम की धुन लगा दी और आठ पहर तक वहीं बैठे रहे। परमात्मा की कृपा से ओला बन्द हो गया। सब लोग बहुत कृतज्ञ हुए और सराहना करने लगे।

हमने कहा कि इसमें हमारा कोई करिश्मा नहीं। जो परमात्मा ने करना चाहा कर दिया। यह सब राम की

कृपा है जिसका तुमने नाम लिया।

वह ब्राह्मण दावत किए बिना न माना। उसकी स्त्री ने बड़े प्रेम से भोजन बनाया। उन दोनों लड़कों को लाकर कदमों में डाल दिया कि यह आप जैसे फकीर की दुआ है कि इनका मुँह देखना नसीब हुआ और उन्हीं के कहने के अनुसार इनका नाम रखा है।

हमने यह प्रकट न किया कि हम वही हैं जो पहले यहाँ पर आये थे और न ही उन्होंने पहचाना परन्तु अब सब गाँव वाले मिलकर यहीं रहने के लिए अनुरोध कर रहे थे। हमारी तबीयत तो यहाँ रहने को मान ही न रही थी कि अकस्मात् आपका संकेत मिल गया और हम उस झंझट से निकल आए।

आपने ( श्री परमहंस दयाल जी ) फ़रमाया यह विचित्र करामातों के सम्बन्ध में है, मगर आत्मज्ञान और ब्रह्मानन्द यानि फ़कीरी और ही चीज़ है—

हर कश्फ़ बराँ चेहरा नकाबे दिगर अस्त,<br>
हर बहर दरी राहे सुराबे दिगर अस्त।<br>
अज़ रफ़ए-हिजाबे-ख़ेश मग़रूर मुबाश,<br>
कई रफ़ए-हिजाब हमहिजाये दिगर अस्त॥

मुमुक्षु साधक को मालूम होना चाहिए कि सार व असार के विचार और गृह व कुटुम्ब के त्याग करने से मन निर्मल होकर भगवद्स्वरूप का प्रकाश जिस-जिस भाँति प्रकट

व साक्षात हो जाता है, उसी-उसी भाँति परोक्ष व अभूत बात का जानना और सत्य हो जाना, वचन आशीर्वाद और श्राप प्राप्त हो जाना, मनोवान्छित फल, जो कि अणिमा आदि अष्ट सिद्धि-प्रसिद्धि की सम्बन्धी हैं—यह सब अधिक हो जाता है। जो कहीं विरक्त योगी का चित्त उन सिद्धियों की ओर लग गया तो सब जाता रहा। फिर ठिकाना लगना कठिन है। सो उस समय मन को ऐसा संभाले कि तनिक भी मन उन सिद्धियों में न लगे। ऐसा त्याग करे जिस भाँति विष्ठा को घिनौना जानकर छोड़ देते हैं। जो उस समय सम्भल गया तो तुरन्त मनोवांछित पद को पहुँच गया; जो उन बटमारों ने लूट लिया तो फिर पता लगाना मुश्किल है। मगर यह मुकाम बड़ा दुश्वार-गुजार ( दुर्गम ) है। बड़े-बड़े होशियार और अकलमन्द दुविधाग्रस्त हो जाते हैं और जबतक उनका त्याग न करें बचना मुश्किल है—

चढ़ गजराज चतुरंगिणी समाज संग,

जीत क्षितिपाल सुरपाल में सजत हैं।

विद्या अपार पढ़, तीर्थ अनेक कर,

यज्ञ और दान बहु भाँति सो करत हैं।

तीन काल में नहाय, इन्द्रियों को बस लाये,

करें उपवास विषय-वासना तजत हैं।

जोग और यज्ञ, जप-तप अनेक करि,

बिना भगवन्त भक्त वहु न तरत हैं।

जलें गढ़ें बुड़ें उड़ जायें, पर काया परवेश करायें।
और पराये मन की जानें, चलकर जायें तहां मनमाने।
भूलें जहाँ चतुर और ज्ञानी, उनको तजें भक्त तृण जानी।

सरमदे ग़मे इश्के बुल्हविस राना दिहन्द।
सोज़े दिले परवाना मगस राना दिहन्द॥
उम्रे बायद कि यार आयद बकिनार।
ईं दौलते सरमद हमः कस राना दिहन्द॥
चाशनी ए-दर्दे इशक क़ाबिले हरसिफ़ला नेस्त।
ज़हरग्रज़ ख्वाने शहाँ नामव रा दिहन्द॥
इसरारे मुहब्बत रा हर दिल न वदद क़ाबिल।
दुर नेस्त बहर दरिया ज़र नेस्त बहर काने॥

अर्थात् हाथी घोड़े आदि चतुरंगिणी सेना से सजधज कर दिकपालों को जीतकर इन्द्रपद को पा लिया। अत्यधिक विद्या पढ़ ली, विद्वान बन गया, अनेक तीर्थाटन कर लिये, अनेक प्रकार से दान करके यश व कीर्ति भी पा ली। तीन समय स्नान किया और इन्द्रियों को वश में किया तथा व्रत आदि करके विषय वासना का त्याग भी कर लिया। योग, यज्ञ, जप-तप भी अनेक किए फिर भी भगवान की भक्ति के बिना भवसागर से नहीं तर सकता। अभिप्राय यह कि योग

यज्ञ, जप, तप करने से फिर वही अहं ही अपना सिर उठा लेता है और किए कराये पर पानी फेर देता है। भक्ति तभी होती है जब किसी सन्त सतगुरु की चरण-शरण अथवा आश्रय ग्रहण किया हो। तभी वे पग-पग पर जीव की सम्भाल करते हैं और जीव भक्ति करके भगवान से जा मिलता है।

इस भक्ति के मार्ग में यह शक्तियाँ सुलभ हो जाती हैं कि जलकर, डूबकर, गढ़कर भी शरीर को पुनः जीवित कर सकता है। दूसरी काया में प्रवेश करना, दूसरे के मन की बात को जानना, जहाँ जी चाहे वहाँ पहुँच जाना—यह सब कुछ सुलभ हो जाता है। इसी स्थिति पर पहुँचकर बड़े-बड़े चतुर ज्ञानी भटक जाते हैं। इस झीनी माया में फँस जाते हैं परन्तु भक्ति के अभिलाषी इसे तिनके के समान तुच्छ जान कर त्याग कर देते हैं।

परमात्मा की नज़दीकी पाने के लिए इन भ्रम-जालों से दूर रहना होगा और अपने अन्दर परमात्मा के प्यार की आग भड़कानी होगी। परवाना की तरह एक लक्ष्य पर ध्यान रखना है। परमात्मा की नज़दीकी मिलते समय यह न हो कि बीच में शान-शौकत और हवस बाधा डाल दे। परमात्मा को पाने की लगन हर एक के दिल में जागृत नहीं होती और न ही प्रत्येक इसके योग्य है यह तो किसी विरले को विशेष उपहार मिलता है।

आपने फ़रमाया कि वह फ़कीर हालांकि इन चीज़ों

के पाने का इच्छुक न था। वह भी परमात्म लीन था परन्तु हमारे साथ कुछ समय संग मिला और रोशनी मिली इसीपर कृतज्ञ था। इसके बाद आपने अपने मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दिया और वह अपनी राह चल दिया।

तभी तो वाणियों में सन्तों का संग विशेष कहा गया है और उनके स्वभाव की सराहना की गई है।

॥ दोहा ॥

मान अपमान न चित्त धरै, औरन को सनमान।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥

सीलवंत दृढ़ ज्ञान मति, अति उदार चित होय।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥

ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥

कि सन्तजन संसारी जीवों के मान अपमान को चित्त पर नहीं लगाते। वे सदा सबका सम्मान करते हैं। जो कोई भी, चाहे वह संसारी है या विरक्त उनके द्वार पर आशा लगाकर आता है, उनकी मनोभावना के अनुरूप उन्हें ज्ञान दे देते हैं। क्योंकि वे स्वयं शीलवान्, गुणनिधान और उदार स्वभाव के होते हैं। शरणागत की लाज रखना उन का बिरद है और कोमल हृदयी होते हैं। उन्हें अपने ज्ञान

अथवा विद्वत्ता का अभिमान नहीं होता। सत्यपथ प्रदर्शक बिना किसी स्वार्थ के दूसरों के भावों का आदर करते हैं अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सबको सत्य-पथ पर लगाते हैं।

ऐसे दिव्य गुण सम्पन्न परमार्थ पथ के प्रवर्त्तक सच्चिदानन्दघन थे श्री परमहंस दयाल जी। आपकी धवल उज्ज्वल रश्मियों से अनेकानेक हृदय कृतज्ञ हैं और रहेंगे।

# ज्ञान गंगा

## ( कर्म लौटते हैं )

संसार की जितनी भी रचना है--जड़-चेतन या यूँ कहिये चर-अचर सब नाशवान् है। जो इस लोक में आया है उसे अवश्य लौट जाना है, यह प्राकृतिक विधान है। लौटकर अर्थात् एक देह के प्रयाण करने पर दूसरी देह में लौटकर आना है। तात्पर्य यह कि लौट जाना और लौट आना ही जन्म-जन्मांतरों का, आवागमन का हेतु है और यह नियम सर्वदा से चला आया है, चल रहा है और चलता रहेगा; इसमें कोई उलट फेर नहीं हुआ कि किसी का शरीर सदा के लिए अमर हो गया हो; वह कभी जीर्ण-अवस्था को प्राप्त न हुआ हो अथवा सत्ययुग, द्वापर, त्रेता यहाँ तक कि कलियुग जिसे अभी लगभग पाँच छः हज़ार वर्ष ही हुए होंगे--इन युगों में से कोई प्राणी अभी तक सदेह जीवित दिखाई दे रहा हो। नहीं-नहीं ! ऐसा जब कुदरत का विधान ही नहीं तो ऐसा होगा भी कैसे ?

पुरातन ऋषि मुनियों के इतिहास अथवा अनेकों

हठयोगी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि हज़ारों वर्ष वे समाधिस्थ रहे। अपनी देह से उन्होंने प्राणों को रोक लिया। जड़वत् देह गर्मी, सर्दी, आतप सहने में सक्षम रही परन्तु प्राकृतिक विधानानुसार उन्हें इस देह को त्यागना ही पड़ा। हाँ इतना अवश्य है कि प्रभु-प्राप्ति की आकांक्षा से उन्होंने तप-साधन किये तो उसी इच्छा को पूर्ण करने हेतु उन्हें उत्तम और श्रेष्ठ कुल में जन्म मिला और वे जन्म लेते ही तपसाधना में लीन हो गये। अभिप्राय यह कि कर्मफल के अनुसार उन्हें जन्म योनि तो प्राप्त करनी ही पड़ी।

यही दशा संसार में अन्य प्राणियों की भी है। जो जिस प्रकार के कर्म करता है उसे उसी अनुरूप जन्म-योनि के रूप में परिणाम भी भोगना पड़ता है। तभी तो सन्तों की वाणियां पथ दर्शाती हैं कि—

॥ चौपाई ॥

पिंड प्रधान बसें तन माहीं।
करता ने काया उपजाई ॥
वेद पुरान कर्म उपराजा।
यासे करे जीव जग काजा ॥
करता करम किया बिस्तारा।
लख चौरासी रूप संवारा ॥
काल अपर्बल जाल पसारा।

उन सब घेरि जीव को मारा ॥
कर्म कलन्दर आप नचावे ।
बाजी लाये जीव भटकावे ॥
कई बंधन में बाँधे भाई ।
ऐसे बंध अनेक लगाई ॥
कोई दांव नहिं मारग पावे ।
धरि धरि देही जन्म सिरावे ।
चौरासी से निकरि न पावे ।
बार बार वहि माहिं समावे ॥

॥ दोहा ॥

कर्म सारनी बुधि बसी, सुरति रही अधीन ।
आसा के बस में पड़ी, वासा विपति मलीन ॥

( श्री तुलसी साहिब )

ब्रह्म ने यह मनुष्य शरीर उत्पन्न किया तो इसमें मन और बुद्धि का प्रवेश कर दिया जिसके द्वारा मानव शरीर की सीमा से बाहर न जा सकें। मन और बुद्धि केवल शारीरिक सुख-सुविधाओं के साधन जुटाकर जीव को भरमा देते हैं जिससे यह बहिर्मुखी बनकर वास्तविक वस्तु को भुला बैठता है । पुनः चार वेद में रचित कर्म, यज्ञ, तप का ज्ञान प्रदान कर दिया । यदि संयोगवश जीव की वृत्ति सात्त्विक हुई, मन और बुद्धि पर अज्ञान का आवरण न आया और

वह शास्त्र ग्रन्थों का स्वाध्याय, पठन-पाठन कर शुभ कर्मों की ओर प्रेरित हुई तो सात्त्विक माया ने उसे आ दबोचा। उसके दिल में स्वर्गों के सुख पाने की इच्छा जागरूक हो गई। लोह की जंज़ीर से छूटकर सोने की बेड़ियों में बन्ध गया। आखिरकार स्वर्गों के सुख भी तो केवल शारीरिक सुखों तक ही सीमित हैं। इसप्रकार जीव नरक-स्वर्गों के कर्म-बन्धनों में बन्धता चला गया।

अब इन कर्मों के अनुसार ब्रह्मा ने जन्म-योनियों के रूप में चौरासी लाख योनि रूपी पिंजरे बना दिए। प्रत्येक जीव अपने कर्मानुसार योनि रूपी पिंजरे में कैद हो जाता है। अस्थि के ढांचे को ही 'पिंजर' कहा जाता है। जैसा जन्म मिला उसी अनुरूप पिंजर बन गया और योनि बन गई पिंजरा। बस! जीव उसमें कर्म भुगतने के लिए कैद हो गया। चौरासी लाख योनियों में बीस लाख रूपक वृक्ष, ग्यारह लाख प्रकार के कीड़े-मकौड़े, दस लाख प्रकार के पक्षी, नौ लाख जल-जीव, तीस लाख पशु योनियाँ तथा चार लाख प्रकार के मनुष्य हैं। मानव योनियों में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, देवी, देवता सभी योनियाँ मानी गई हैं। तभी तो कहा जाता है कि मनुष्य-जन्म केवल चौरासी लाख योनियों में से एक ही है, सर्वोत्तम एवं देवदुर्लभ है। क्योंकि कर्म-बन्धन काटने का यही केवल एक सुअवसर है, अन्य योनियाँ नहीं।

यह माया का पसारा सब काल के अधीन है। इसी काल माया के घेरे में ही कैद हुए हुए जीव बन्धन में बन्ध

गए हैं। असीमित काल माया के पसारे में जीव उलझ गए हैं और वे जीव को इसप्रकार भटकाते हैं जिसप्रकार मदारी बन्दर को घर-घर नचाता है। कर्म-फल सात्त्विक हुए तो स्वर्गों की प्राप्ति यदि तामसिक हुए तो नरक। अर्थात् सुख-दुःख के चक्र में जीव बंध ही गया है। इसपर भी जीव पर अनेकों कायिक बन्धन बाँध दिए। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-परिवार धन-ऐश्वर्य आदि सब के साथ नाता जुड़ गया। अब इन मोह, लोभ एवं अहंता की रस्सियों को तोड़े तो कैसे? किसी भी ढंग से यह निकल नहीं पाता और पुन: पुन: जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता और चौरासी लाख की उन्हीं योनियों को बार-बार धारण करता और छोड़ता है।

इन्हीं कर्मभोगों के अधीन सुरति रह गई और इच्छाओं की दासता में जकड़ी गई। यही इच्छायें ही विपत्तियों का मूल बन गई। बुद्धि मलीन हो गई और उसने उसी अनुरूप ही कर्म करने आरम्भ कर दिए। इन्सान की दशा ऐसी हो जाती है कि–

॥ शेयर ॥

मैं फूल चुनने आया था बागे-हयात में।
दामन को खार-ज़ार में उलझा के रह गया॥

कि मनुष्य ने एक उद्यान में बहुत सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए देखे। उनकी भीनी भीनी सुगन्धि ने उसके दिमाग को तरो-ताज़ा कर दिया और उसका मन ललचा उठा फूलों

को पाने के लिए। माली से पूछा और घुस गया फुलवाड़ी में। उसे विदित न था कि डाली पर महकने वाले फूलों की डाली पर असंख्य काँटे हैं। इनसे दामन को बचाकर सावधानी से फूल तोड़ने हैं। ज्योंहि फुलवाड़ी में घुसा काँटों में दामन उलझ गया। एक स्थान से छुड़वाता है तो वह दूसरे स्थान पर अगला छोर चिपक जाता है। इसप्रकार छुड़वाते छुड़वाते दामन भी तार-तार हो गया और शरीर भी काँटों के खरोंच से लहू-लुहान हो गया। तब भी मन ने चाहा कि अब तो फूल तोड़ लूँ। दर्द तो सहन करनी ही पड़ गई। ज्यों फूल को डंडी से तोड़ने लगा कि अँगुलियाँ भी काँटों से छिद गई और कराहता हुआ वापिस लौटा।

माली ने पूछा—क्यों भई! कितने फूल लाए। कितने! मेरी हालत तो देखो! दर्द के मारे दम निकला जा रहा है। फूल क्या तोड़ता।

हाँ तो माली! आप कैसे ढेर सारे फूल बीन लाते हो?

भई! हमने अपने पुर्खों (बाप-दादा) से युक्ति सीखी। जन्म से लेकर आज तक पहले सीखा पुनः किया। काँटों से स्वयं को बचाकर फूल तोड़ लाते हैं।

तात्पर्य कि इसीप्रकार ही परमात्मा ने मनुष्य को संसार का खेल तमाशा देखने के लिए यहाँ भेजा। यहाँ आकर मनुष्य ने किसी से संसार में रहने की युक्ति को न

सीखा, स्वयं को बुद्धिमान समझ माया के रंग तमाशों में लुभायमान हो गया। स्वयं सुख स्वरूप था अपने स्वरूप को भूल गया और सुख के बदले दुःखों में दामन उलझा लिया। कर्म-बन्धन में बन्ध गया और सदा सदा के लिए अपने अंश से बिछुड़ कर आवागवन का चक्र, दुःखों का पहाड़ मोल लिया।

यदि विधाता ने सृष्टि रचाकर माया-जाल फैलाकर जीव को बन्धन में डाल दिया है तो इसके साथ साथ इस कर्म-बन्धन को काटने का उपाय बताने वाले, संसार में विमुक्त जीवन बिताने की युक्ति बताने वाले सन्त-सत्पुरुषों को भी इसी धरा पर ही अवतरित किया है। सन्त-सत्पुरुष हर युग, हर काल एवं हर समय में अवतरित होते हैं। जो जीव उनसे युक्ति सीख लेता है वह युक्तिपूर्वक जीवन बिता कर उन्मुक्त रहता है। उसे कर्म-बन्धन नहीं बाँध सकते। उस के लिए यह संसार एक कर्मशाला है, खेल-तमाशा है और वह है अभिनय करने वाला मात्र पात्र।

अच्छे या बुरे किसीप्रकार के किए हुए कर्म ही अपने सामने आते हैं। यह बात और है कि अन्य योनि के प्राप्त होने पर पूर्वकृत कर्म स्मरण नहीं रहते। ठीक है! पिछले किए हुए कर्म यो तुझे याद नहीं कि क्या किया था, अब भुगतने के समय यह तो विदित हो रहा है कि मेरे ही पूर्व-कृत कर्म हैं ये। जब उनको भुगतने में दुःखी हो रहा है तो आगे के लिए पुनः क्यों नहीं ज्ञानपूर्वक कर्म करता। क्यों

नहीं सत्पुरुषों की चेतावनी पर ध्यान देता ?

इतिहास साक्षी है कि राजा धृतराष्ट्र जन्म से ही नेत्रहीन था। उसने अपने मुंह से यह शब्द श्री कृष्ण जी को कहे थे कि–महाराज ! मुझे अपने पिछले सौ जन्मों का पूर्ण ज्ञान है कि मैंने उन जन्मों में कौन सा कर्म किया है। मुझे तो उन कर्मों में से एक भी ऐसा घृणित कर्म नज़र नहीं आता जिससे मुझे नेत्रहीन बनना पड़ा।

श्री कृष्ण जी ने कहा–ऐ राजन् ! इन्हीं सौ जन्मों में ही यदि एक बार तुम नेत्रहीन बन जाते तो तुम्हारी कर्म-शृंखला इतनी दूरी पर न जाती। उन्होंने दिव्य-दृष्टि द्वारा सौ जन्मों से पहले के कर्म-चित्र धृतराष्ट्र को दिखाए। सौ जन्म से छः जन्म पूर्व में उसने किसी की आँखें निकलवाई थीं। वह देखकर घबरा गया और उसका दिल दहल उठा। बस ! प्रभो ! बस इससे अधिक और कुछ मत दिखाइये।

तभी तो सन्तों ने वाणी में सत्यता को दोहराया है–

कहु रविदास भइग्रो जब लेखो,
जोई जोई कीनी सोई सोई देखिग्रो ॥

रविदास जी कहते हैं कि जब कर्मों का हिसाब होता है, तब जो जो कर्म किए गए होते हैं, वही कर्म दीख पड़ते हैं।

अब ज़रा सोचो और विचार करो कि धृतराष्ट्र

अपने पिछले जन्मों को जान रहा है कि मैंने क्या क्या कर्म किए। अब भगवान की कृपा से एक सौ छ: जन्मों का भी ज्ञान हो गया और यह विदित भी हो गया कि कर्म तो अवश्यमेव स्वयं को ही भुगतना है। फिर भी अपने पुत्र दुर्योधन के मोह में और सिर पर रखे हुए ताज के अहं में इतना अन्धा हो गया था कि भाई विदुर एवं भगवान श्री कृष्ण जी के ज्ञान तथा नीति की ओर उसने तनिक भी ध्यान न दिया।

बन्धनमुक्त हो सकता था धृतराष्ट्र ! यदि श्री कृष्ण जी के ज्ञान उपदेशानुसार जीवनयापन करता, पुत्र-मोह में न फँसता तो। कई जन्म बाद क्या इसी जन्म में परिणाम उस के सामने ही आ गया। आखिर अपने कुटुम्ब का सर्वस्व स्वाहा हो गया और जिनका अधिकार था राज्य उन्हीं को मिल गया।

'कर्मन की गति न्यारी'

सभी यही कहते हैं, पढ़ते हैं, सुनते हैं, भुगतते हैं परन्तु फिर भी संसार के माया जाल में ऐसे उलझ जाते हैं कि कुछ ज्ञान ही नहीं रहता कि आगे क्या होना है और पीछे क्या किया था।

संसार में कई बार कई क्रान्तियाँ आईं। कई युग पलटे परन्तु प्रकृति का विधान एक ही रहा। एक युवक ! जिसके नाम धाम को कोई जानता न था। किसी ने पूछा----भई तुम्हारा नाम ! असहाय। बस इतना ही कह पाता था और

चल देता था आगे की ओर। कुल्लू की घाटियों में अकसर उसे देखते ही अनायास ही एक वेदना भरी आवाज़ में कह उठते थे लोग--बेचारा ! असहाय। ठाँव ठिकाना नहीं बताता अपना और कभी कभार दुकानों पर दीख पड़ता है।

प्रथम महायुद्ध के पच्चीस-तीस वर्ष उपरान्त विदेश में वह युवक अपने यौवन के उन्माद में, ऐश्वर्ययुक्त जीवन बिता रहा था। अपनी जन्म-भूमि तो शायद उसे याद ही न थी। परन्तु संस्कार ! संस्कार तो कुछ पूर्व संचित और कुछ माता-पिता एवं मातृ-भूमि के उसके अन्दर दबे पड़े थे। उसने बचपन में अपनी दादी से कहानियाँ सुनी हुई थीं कि हिम पर्वत हिमालय की गुफ़ाओं में आज भी हज़ार वर्ष की आयु सैकड़ों वर्ष बिना अन्न जल ग्रहण किये हुये सत्यता के पुजारी जीवित हैं। उसके मन में कभी कभार यह इच्छा जागृत होती थी कि उनके विषय में जानना चाहिए।

अचानक क्रान्ति हुई। राजनैतिक समस्यायें समय परिवर्तन के साथ मोड़ लेती हैं। अचानक विदेश से प्रवासियों को निकाला जाने लगा और उनके साथ अमानवीय घटनायें घटित हुईं। उस युवक की स्त्री तथा पुत्र को निर्दयता से उसके सामने मार-पीटकर सीखचों के अन्दर ले जाया गया। इसने कुछ स्वर्ण मुद्रायें जेब में डालीं और हिमाच्छित प्रदेश में हिमालय की ओर मनःशान्ति को प्राप्त करने के लिए चल पड़ा। रह-रहकर उसे अपनी पत्नी और पुत्र की याद आती तो मन चीत्कार कर उठता। परन्तु अब हो ही क्या

सकता था। भूख-प्यास, सर्दी आदि सहन करने की उसमें क्षमता न थी। ऊनी पतलून, ओवरकोट एवं टोप पहने वह कभी-कभार हिमाच्छित प्रदेश से नीचे उतरता। दुकान पर स्वर्णमुद्रा फैंकता और खाने-पीने का सामान जुटाकर चल देता। पहाड़ पर एक गुफ़ा में उसने एक योगी को देखा। समाधिस्थ! प्राणों का स्पन्दन भी है या नहीं, वह नहीं जानता था। बस! उसने मन:शान्ति को प्राप्त करने के लिए गुफ़ा के बाहर वृक्ष की खोल में डेरा लगा लिया।

कभी कभी लकड़ियाँ बीन कर लाता और गुफा से बाहर जला देता कि शीतलता कम हो जाये। कभी दूध एवं फलादि रख देता कि जब भी योगी उठें, श्रद्धा स्वीकार कर उसे अनुग्रहीत करें। परन्तु महायोगी तो अपने अडिग आसन पर आसीन थे। प्रतीक्षा करते हुये मास बीतने लगे और स्वर्ण मुद्रायें भी समाप्त होने को आईं। सोचा! आखिर अब मेरा कौन है, कहाँ जाऊँ? जो होगा देखा जायेगा। असहाय की पुकार कभी तो पहुँच ही जाएगी। यहीं जीवन को हिम-वत बना लूंगा परन्तु कहीं जाऊँगा नहीं।

प्रतीक्षा सफल हुई। एक दिन वह जैसे ही गुफा से बाहर सफाई आदि के लिये आया तो गुफा एक दिव्य प्रकाश से जगमगा रही थी। इतना तीव्र प्रकाश महायोगी की देह से प्रस्फुटित हो रहा था जिसे कोई देख न सके। उसने नेत्रों पर हाथ रख लिए, झुककर तेजपुञ्ज के समक्ष दण्डवत वन्दना की।

महायोगी ने कहा--वत्स ! तुम्हारा परिचय ?

मैं विदेश में ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करनेवाला इसी पावन भूमि का नागरिक हूँ। परन्तु...परन्तु बिना किसी दोष के क्रान्ति-कारियों ने मेरा घर उजाड़ दिया। मुझे हंटरों से पीटा और...और अब मैं असहाय आपकी शरण में हूँ। कहते कहते उसकी घिग्गी बंध गई। क्या आप उन पिशाचों से मेरा प्रतिशोध नहीं दिला सकते ? मैं आपके द्वार पर कब से आँखें बिछाये सहायता की प्रतीक्षा कर रहा हूँ महाराज। असहाय युवक ने करुणाभरी विनय की।

हाँ ! सब कुछ हो सकता है वत्स ! केवल अपने भूत-पूर्व जन्म को इन आँखों से देख लो--महायोगी ने शान्त एवं मधुर वाणी में कहा।

उसने आँखें बन्द कीं और उसी क्षण उसकी आँखों के समक्ष चलचित्र की भाँति एक-एक चित्र सामने आने लगा। कंटीली तारों के घेरे में सैंकड़ों स्त्री-पुरुष और बच्चे। वह राजाओं का युग था। यह सेनापति के रूप में घोड़े पर चढ़ा हुआ हंटरों से पीटता हुआ हँसता जा रहा था। स्त्री ने करुण पुकार की। उसके बच्चे को छीनकर घोड़े के नीचे पद दलित कर अट्टहास करता हुआ सहकारियों सहित सब ने स्त्रियों को भी निर्दयता से कुचल डाला। उसकी सम्मोहित निद्रा भंग हुई। उसका दिल दहल उठा और उसे ऐसा लगा कि यह सब कुछ वह अभी कर रहा है। इससे अधिक वह

और सहन न कर सका और थर थर कांपते हुए कहा–क्षमा ! क्षमा महायोगी क्षमा !

यह तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं युवक ! तुम्हारे सहकारी ही तुम्हारे स्त्री-पुत्र हुए। कोई किसी को दुःख-सुख, सम्मान अपमान नहीं देता वत्स ! अपने किये हुए कर्म ही दीवार पर फेंकी हुई गेंद के समान लौटकर अपने पास आते हैं। इस विधान को कोई नहीं टाल सकता–महायोगी ने दिव्य वाणी में समझाया।

युवक ने चरणों पर नतमस्तक हो क्षमा माँगी तथा महायोगी को मार्ग दर्शक बनाकर जीवन में सत्यता के मग पर अग्रसर होने लगा।

सन्त सत्पुरुष अपनी वाणियों द्वारा यही जीव को समझाते हैं कि ऐ जीव ! इस संसार में आकर माया के लुभावने रसों में मत उलझ। वह कर्म कमा अर्थात् निष्काम कर्म कर जिससे तेरे कर्मों की शृंखला ही कट जाये और तू कर्म करता हुआ भी निष्कर्म बना रहे। क्योंकि जीव की दशा तो ऐसी चली आ रही है–

॥ दोहा ॥

कर्मन के प्रेरे फिरो, जन्म जन्म दुख होय।
मुक्ति बिचारो सहजिया, आवागवन जु खोय॥

जन्म चलो ही जात है, ये दिन आछे जाहिं ।
जीवत जागह न करी, बैठोगे केहि ठाहिं ॥

( सन्त सहजो बाई जी )

अतः जीव को अपनी भलाई-बुराई तथा जीवन की सत्यता एवं असत्यता पर विचार करते हुए जीवन यापन करना उचित है । जो इस रहस्य को समझकर जीवन-यापन करते हैं उन्हीं का जीवन ही सुखमय तथा सफल जीवन बनता है । यही सन्तों का ग्रादेश और जीवन का उद्देश्य है ।

# श्री अमृत वचन

## शरीर और आत्मा

मनुष्य जितना यत्न एवं पुरुषार्थ शरीर की देखभाल तथा शारीरिक सुखों की प्राप्ति के लिए कर रहा है, यदि वह उतना यत्न एवं पुरुषार्थ आत्मा की भलाई के लिए करे, तो मनुष्य को अत्यधिक लाभ हो और उसके जीवन का ध्येय पूरा हो जाए। विचार किया जाए कि संसारी मनुष्य की विचारधारा प्राय: किस दिशा में कार्य कर रही है? वह उत्तम एवं श्रेष्ठ मनुष्य-जीवन को प्राप्त करके उससे क्या काम ले रहा है? आम संसारी मनुष्य तो इस श्रेष्ठ जीवन को शरीर के सुख-आराम, शरीर के पालन-पोषण तथा शरीर से सम्बन्धित कार्यों के लिए ही व्यय कर रहा है। विरले ही ऐसे सौभाग्यशाली गुरुमुख होते हैं जो इस शरीर से आत्मा की भलाई तथा आत्मा के कल्याण का काम लेते हैं। संसारी मनुष्य तो शारीरिक सुखभोग को ही जीवन का ध्येय समझ रहे हैं और जीवन को केवल शारीरिक एवं

ऐन्द्रिक कार्यों में ही व्यय कर रहे हैं।

यदि कोई मनुष्य यह समझता है कि मैं जो कुछ अपनी समझ के अनुसार कर रहा हूँ वही ठीक है, तो उसका यह विचार पूर्णतया गलत है। वास्तविकता का ज्ञान केवल वास्तविकता के ज्ञाता सन्त-महापुरुषों को ही है और उन सत्पुरुषों के उपदेशों के प्रकाश में ही ज्ञात हो सकता है कि सही क्या है और गलत क्या है। सन्तों सत्पुरुषों के उपदेश यह बतलाते हैं कि जो मनुष्य यह समझता है कि इस जीवन में शारीरिक एवं ऐन्द्रिक सुखभोगों के पदार्थ एकत्र कर लेने से सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होगी, तो वह गलती पर है। शरीर एवं इन्द्रियों के सुखभोगों में सुरति को लगाने से तो सुख के स्थान पर दुःख और शान्ति के स्थान पर अशान्ति ही प्राप्त होगी। आम संसारी मनुष्य की वृत्ति का झुकाव शरीर एवं इन्द्रियों के सुखभोगों में इसलिए है कि दिन-रात संसारियों की संगति में रहकर उसे यही शिक्षा प्राप्त होती है और इन्हीं शरीर एवं इन्द्रिय सम्बन्धी विचारों को शक्ति एवं पुष्टि प्राप्त होती है; जिस वास्तविक उद्देश्य के लिए मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ था, उस वास्तविक कार्य की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। संसारियों की संगति में तो शरीर तथा इन्द्रिय सम्बन्धी विचार ही मिलेंगे। सिवा सत्पुरुषों की संगति के वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त हो भी तो क्योंकर ?

सन्तजन बतलाते हैं कि मनुष्य-शरीर तो इसलिए प्राप्त हुआ है कि इससे आत्मा के कल्याण और मुक्ति का

काम लिया जाए। यह शरीर वास्तव में आत्मा का सेवादार है। आत्मा इसका मालिक है और शरीर का काम आत्मा की सेवा करना है। किन्तु हुआ इसके विपरीत अर्थात् शरीर ही आत्मा पर सवार होकर आत्मा का स्वामी बन बैठा और आत्मा से ही अपनी इच्छानुसार शरीर एवं इन्द्रियों के काम लेने लगा। शरीर तो इसलिए प्राप्त हुआ था कि उसके द्वारा आत्मा की भलाई का काम किया जाता अर्थात् आवागमन के चक्र से आत्मा को मुक्ति दिलाने के लिए शरीर से काम लिया जाता, परन्तु मन तथा माया के प्रभुत्व में आ कर मनुष्य वास्तविक ध्येय को भुलाकर गलत मार्ग पर लग गया और शरीर-इन्द्रियों के सुखभोगों के प्राप्त करने को ही जीवन का ध्येय समझ बैठा। किन्तु यह तो वास्तविक कार्य नहीं है जिसके लिए वह संसार में आया था ?

महापुरुष जतला देना चाहते हैं कि मनुष्य का वास्तविक कार्य केवल शरीर इन्द्रियों की तुष्टि ही नहीं है, प्रत्युत् आत्मा की मुक्ति के लिए यत्न एवं पुरुषार्थ करना ही वास्तविक कार्य है। यह अनमोल जीवन केवल इसी ध्येय की पूर्ति के लिए ही प्राप्त हुआ है, शरीर एवं इन्द्रियों की पूर्ति के लिए यह जीवन नहीं मिला। शरीर तथा इन्द्रियों के सुख-भोगों में फँसाकर तो मनुष्य का मन उसे धोखा दे रहा है और उसे वास्तविक उद्देश्य से भटका रहा है। जिस शारीरिक सुख के लिए आत्म-कल्याण के कार्य से लापरवाही की जाती है, वह शारीरिक सुख भी कहाँ प्राप्त होता है ? मनुष्य का

शरीर कभी सुखी रहता है तो कभी दुःखी। कभी यह शरीर स्वस्थ है तो कभी रोगी। बस ! इसीप्रकार शारीरिक सुख दुःख के चक्र में पड़े-पड़े जीवन का अमूल्य समय नष्ट हो जाता है और मनुष्य अपना वास्तविक काम नहीं कर पाता। यदि मनुष्य आत्म-कल्याण के कार्य में लग जाता तो उसे मुक्ति तो प्राप्त होती ही, जीवन में भी सच्चे सुख, शाश्वत् आनन्द तथा परम शान्ति की उपलब्धि होती, परन्तु हुआ यह कि शरीर तथा इन्द्रिय सम्बन्धी कार्यों में दिन रात तत्पर रहकर वह चिन्ताओं, कष्टों, क्लेशों तथा अशान्ति का शिकार हो गया। कारण इसका यह है कि मनुष्य भूल और भ्रम में पड़कर गलत मार्ग पर चल पड़ा। अब स्वयं ही अपने द्वारा उत्पन्न कष्टों एवं क्लेशों की शिकायत भी करता है तथा उनके हाथों दुःखी भी है परन्तु सही मार्ग फिर भी नहीं सूझता।

वास्तविक सूझ-बूझ कैसे प्राप्त हो सकती है और सच्चे सुख एवं आनन्द का भेद कैसे ज्ञात हो सकता है? केवल सत्पुरुषों के सत्सङ्ग में ही यह भेद खुल सकता है, संसारियों की संगति में नहीं। सम्पूर्ण संसार तो शरीर एवं इन्द्रियों की तुष्टि में मग्न है। जब सम्पूर्ण संसार की ही ऐसी दशा हो, तो आम मनुष्य पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। अतीव सौभाग्य से तथा परमात्मा की असीम अनुकम्पा से जब मनुष्य को सन्तों महापुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, तो उसे वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त होता है; सन्तों की

संगति अथवा सत्संग में शरीर तथा इन्द्रियों के पालन-पोषण की शिक्षा न दी जाकर इस शरीर द्वारा आत्म-कल्याण का कार्य करने की तथा उससे मुक्ति का काम लेने की शिक्षा दी जाती है। सत्पुरुष समझाते हैं कि शारीरिक सुखों की कामना न रखकर आत्मिक सुख की कामना करनी चाहिए। थोड़े समय के अस्थायी शारीरिक सुखों का लगाव यदि मनुष्य त्याग दे तो उसे नित्य सुख एवं शाश्वत् आनन्द की प्राप्ति हो जाए। शारीरिक एवं ऐन्द्रिक सुख-भोगों को त्यागकर परमात्मा के भजन-सुमिरण में चित्त लगाने से ही मनुष्य उस शाश्वत् सुख तथा नित्य आनन्द को प्राप्त कर सकता है, जिसकी समानता संसार का कोई सुख नहीं कर सकता। परमात्मा के भजन-सुमिरण में यदि शारीरिक दृष्टि से कुछ कष्ट भी हो तो वह भी सुख में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत यदि शरीर एवं इन्द्रियों के हर प्रकार के सुख उपलब्ध हों परन्तु आत्मा व्याकुल और अशान्त हो तो वे शारीरिक सुख भी दुःख के हेतु बन जाते हैं। जिस की आत्मा को शान्ति एवं आनन्द प्राप्त है, उसके लिए शारीरिक कष्ट भी सुख देने वाले बन जाते हैं।

दोनों प्रकार की स्थितियों में कितना महान अन्तर है? एक मनुष्य तो शारीरिक सुखभोगों में आसक्त होकर आत्मा के लिए नारकीय कष्ट तथा दुःख मोल ले लेता है, जबकि अन्य मनुष्य शरीर एवं इन्द्रियों के सुखों की बलि देकर नित्य सुख एवं शाश्वत् आनन्द का सामान कर लेता

है। दोनों में अच्छा कौन हुआ ?

जीवन का अमूल्य समय यूँ ही निकला जा रहा है और मनुष्य भजन-सुमिरण में टालमटोल कर रहा है। वह सोचता है कि आज नहीं तो कल कर लूँगा। किन्तु जीवन अवकाश कहाँ देगा ? और यदि अवकाश मिल भी गया तो ऐसा सुन्दर अवसर जो अब प्राप्त है, कब हाथ आएगा ? इस समय तो आत्म-कल्याण के सब साधन उपलब्ध हैं। मनुष्य-तन है, स्वास्थ्य तथा बल है, सत्संग प्राप्त है और भजन-सुमिरण के सब साधन भी उपलब्ध हैं। ऐसा स्वर्णिम अवसर तो अत्यन्त सौभाग्य से प्राप्त होता है, यह यदि हाथों से निकल गया तो फिर क्या होगा ?

सत्पुरुषों का कथन है–

कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइयो ।
बडै भागि साध संगु पाइओ ॥

अर्थ–यह जीवात्मा करोड़ों जन्मों से मोह-माया तथा काल के चक्र में भटकता चला आया है। अब अत्यन्त सौभाग्य से इसे सन्तों-सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हुई है मानो आत्मा की मुक्ति के लिए सुन्दर अवसर हाथ लगा है।

करोड़ों जन्मों से आत्मा भटक रही है। इन करोड़ों जन्मों का विचार करने से ही मनुष्य का हृदय काँप उठता है। न जाने कितने जन्मों में कैसी-कैसी टेढ़ी और निम्न कोटि की योनियों में भटकना पड़ा होगा। उन निम्न श्रेणी

की योनियों में तो एक जीवन बिताना भी कठिन होता है, फिर करोड़ों जन्मों में तो न जाने कितने कष्टों में से गुज़रना पड़ा होगा, इसका विचार ही भयजनक है।

इस बात को ध्यान में रखकर देखा जाए तो मनुष्य जीवन कितनी अमूल्य देन है। और फिर सत्पुरुषों की उत्तम संगति भी प्राप्त हो जाए तो सौभाग्य का क्या कहना? ऐसी दशा में यदि मनुष्य इस जीवन को शरीर एवं इन्द्रियों के निमित्त गंवा दे और आत्मा की मुक्ति का काम न करे तो परिणाम यह होगा कि फिर उन्हीं निम्न कोटि की योनियों में चला जाएगा। अब जबकि नित्य एवं शाश्वत् आनन्द को प्राप्त करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त है, यदि इस अवसर में सुख आनन्द से वंचित रह गया, तो क्या फिर नीच योनियों में सुख प्राप्त होगा?

मनुष्य यदि विचार से काम ले तो इस अमूल्य एवं स्वर्णिम अवसर से लाभ प्राप्त कर ले, अन्यथा बिना सोचे समझे यदि जीवन बिता दिया और शारीरिक एवं ऐन्द्रिक कार्यों में ही मग्न रहा, तो यह समझ ले कि प्रकृति अपने कार्य से कदापि असावधान नहीं है। एक-एक पल में मनुष्य जो भला-बुरा कर्म करता है, उसका हिसाब रखा जाता है और प्रकृति के हिसाब में कभी भूल नहीं होती। एक-एक कर्म का फल अवश्यमेव भुगतना पड़ता है। इससे कोई भी बच नहीं सकता। इस संसार में गलत काम करके चाहे मनुष्य अपनी चतुराई से लोगों की आँखों से बच जाए, परन्तु

प्रकृति के न्यायालय में तो एक-एक पल का हिसाब चुकाना होगा। प्रकृति के नियमों में देर भले हो, परन्तु अन्धेर कदापि नहीं। कई लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि अमुक व्यक्ति बुरे कर्म कर रहा है परन्तु फिर भी फूलता-फलता जा रहा है। इससे यह न समझना चाहिए कि वह प्रकृति के विधान अथवा नियमों से किसी भी दशा में बच जाएगा। नहीं ऐसा कदापि नहीं है।

यदि मनुष्य को सत्संग की प्राप्ति हो जाए तो यह उसका सौभाग्य है। गुरुमुखजन तो विशेषरूप से सौभाग्य-शाली हैं क्योंकि उन्हें सत्पुरुषों की संगति तथा भजन-सुमिरण का सुनहरी अवसर प्राप्त है। दुःखों तथा कष्टों की सीमा से निकलकर गुरुमुख नित्य सुख और शाश्वत् आनन्द की सीमा में आ गए हैं। यह स्वाभाविक है कि जिस के विचार शुभ हैं, वह सदैव सुखी रहता है और जिसके विचार बुराई की ओर झुके हैं, वह दुःखों कष्टों में घिरा रहता है।

जीवन का ध्येय ही यही है कि सन्त-सत्पुरुषों की संगति में शुभ विचारों को हृदय में स्थान दिया जाए और नाम भक्ति की कमाई करके परमात्मा की प्राप्ति की जाए।

भई परापति मानुख देहुरीआ ।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

अर्थ–ऐ जीव ! तुझे जो यह मानुष देही प्राप्त हुई है, यह परमात्मा से मिलने की बारी तेरे हाथ लग गई है। यही परमात्मा से मिलने का सुन्दर अवसर है। संसार के अन्य जितने भी कार्य हैं, वे तेरे अर्थात् आत्मा के किसी काम नहीं आयेंगे। इसलिए तू सन्त-सत्पुरुषों की संगति में रहकर केवल नाम का सुमिरण कर और भजन में दिल लगा।

यदि कोई कहे कि हम भजन सुमिरण में लग जायें तो हमारे अन्य काम कौन करेगा, तो इसके लिए सन्तों ने अत्यन्त सुगम ढंग बतलाया है कि संसार के कामकाज भी करो और भजन सुमिरण भी होता रहे। भजन सुमिरण तो मन की बात है, शरीर की नहीं।

कर से कर्म करो विधि नाना।
मन में राखो कृपानिधाना ॥

अर्थ–हाथ-पाँव से निस्सन्देह भिन्न भिन्न कार्य करो, परन्तु हृदय में कृपानिधान परमात्मा को बसाए रखो।

यह सहल नुस्खा है जिससे दोनों काम सँवर जायेंगे। इसप्रकार मन बुराई की ओर जाने से भी बचा रहेगा। स्वाभाविक है कि जब परमात्मा के नाम में दिल लगा होता है तो बुरे कामों से दिल अपने आप उचाट होने लगता है।

इसलिए जीवन के इस अमूल्य समय से पूरा पूरा लाभ उठाते

हुए परमेश्वर के नाम तथा भक्ति की कमाई करनी है। ऐसे अवसर बार बार हस्तगत नहीं होते। किसी मनुष्य को यदि पारसमणि प्राप्त हो जाए और वह उसके गुणों से अनभिज्ञ हो, उसकी बात तो अलग है, परन्तु जो पारस के गुणों से भली भाँति अभिज्ञ हो, वह भी यदि पारस के प्राप्त हो जाने पर उससे लाभ न उठाए अर्थात् उसकी सहायता से सोना न बनाकर सदा दीन और दुःखी बना रहे, तो यह उसका अपना ही दोष है। मानव तन तो पारस से भी कहीं बढ़कर है। मनुष्य के जो स्वाँस नाम की कमाई में व्यय हुये, वे मानो भक्तिरूपी स्वर्ण में परिवर्तित हो गए। जिसने पारसरूपी इस शरीर से भक्ति का स्वर्ण बना लिया उसने जीवन का वास्तविक लाभ प्राप्त कर लिया। जिसने यह नहीं किया, उसे अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

इसी प्रकार समय की पूरी-पूरी कदर करते हुए गुरुमुखों को चाहिए कि भजन-सुमिरण तथा नाम की कमाई में अपना एक एक स्वाँस व्यय करके जीवन के वास्तविक ध्येय को प्राप्त करें और अपना लोक-परलोक सँवार लें।
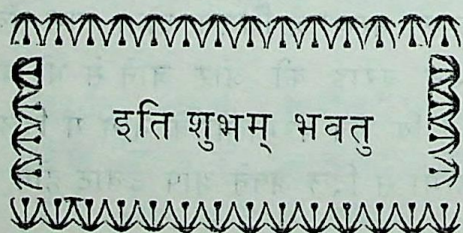
R—46882/87
Oct. 1991 Regd. No. PUNE/PHM/82/VIII

प्रेमाभक्ति, परमार्थ, रुहानियत तथा शान्ति के विचारों
का सन्देश वाहक

त्रैमासिक

# अमर सत्य सन्देश

## आत्मोन्नति का सर्वोत्तम साधन अपनाइये

(१) यह पत्रिका अमर सन्देश कार्यालय से प्रत्येक तीन मास पश्चात् अर्थात् अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर, जनवरी के अंक में प्राप्त होगी।

(२) चन्दा भेजते समय मनीआर्डर के कूपन पर अपना पूरा पता साफ-साफ लिखें और पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या (चिट नम्बर) अवश्य लिखें।

(३) हर तरह का पत्र-व्यवहार तथा मनीआर्डर निम्न-लिखित पते पर भेजें।

अमर सन्देश कार्यालय
पो० श्री प्रयागधाम ज़िला पुणे (महाराष्ट्र)
पिन ४१२२०२